हिंदी गौरव ग्रंथ माला २३वां ग्रंथ

राक्षस का मन्दिर

लेखक

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

साहित्य भवन लिमिटेड,

प्रयाग।

प्रथम संस्करण] [मूल्य १॥)

मेरा दृष्टिकोण।

कला का अ त स्वप्न की फुलवारी में नहीं होता—उसका अ त तो होता है जीवन–समुद्र के उस किनारे जहा आधी है और वज्र है—बिजली है और उ का पात है—जहा मानव जीवन की विषमतायें एक के बाद दूसरी भयकर लहरो के रूप म उठती और बैठती हैं—जहाँ मनुष्य का सारा ज्ञान और आदर्श सुख दु ख शोक हर्ष प्रेम और घृणा कैदी की जजीरो की तरह टूट कर मनुष्य को सदैव के लिये स्वत त्र कर देती है जहाँ मनुष्य प्रवृत्तियो और मानसिक दुर्बलताओ का गुलाम न होकर अपना राजा बन बैठता है जहा उसके जीवन का सत्य ब्रह्माण्ड के सामञ्जस्य में मिलाकर एक हो जाता है। मुमकिन है कला के पारदर्शी इस सिद्धान्त के कायल न हो लेकिन मेरा तो यही अनुभव है। ज़िन्दगी की चहार दीवारी के चारो ओर घूम आना यह तो शायद कला नहीं है—उसे कहा न कहा तोड़ कर [क्योंकि उसके भीतर घुसने का कोई स्वाभाविक रास्ता नहीं है] उसके भीतर घुसना होगा। उसके भीतर घुसजाने पर ओफ़ कितना भ्रम और कितना आडम्बर ? कितना भुलावा और कितनी आत्मवञ्चना—सचाई को छिपा लेने के लिये सभ्यता सस्कार शिक्षा नियम और कानून एक के बाद दूसरे इस तरह अनेक पर्दे।

यह सब किस लिये ? जीवन के विकारो को सजाकर उन्हे और सुन्दर बना देने के लिये—अपनी जजीरो के ऊपर पालिश कर उन्हें और मज़बूत और आकर्षक बना देने के लिये। सचाई कहा खुल न जाय अन्यथा जि दगी म फिर कोई रस नहीं रहेगा। इस युग के स देह

वाद [Scepticism] और बुद्धिवाद [Rationalism] के मूल म यही रहस्य है। मनुष्य ज़िन्दगी की सर्दी गर्मी म इस तरह बेतरह फस गया है कि उसके आगे उसे कुछ नहीं सूझता उसका जीना और मरना सब मजबूरी पर निर्भर है वह जीता है मजबूर होकर मरता भी है मजबूर होकर। वीरता [इस शब्द का प्रयोग मैं उसके आध्यात्मिक और मानसिक दोनो अभिप्रायो मे कर रहा हूँ] का ज़माना जिसमें मनुष्य ज़िन्दगी और मोत को खिलवाड़ समझता था जब फोडे की दर्द म कराहना शरीर का ही नहीं मन की भी कमज़ोरी समझी जाती थी—शायद हमेशा के लिये चला गया। अब तो रोने और हसने में देर नहीं लगती। हमारी कमजोरिया हमें जिधर चाहती है—घुमा देती हैं—हम साहस के साथ खडे नहीं होते पग पग पर हमे भयकर सन्देह का सुख दु ख का दुर्लध्य पर्वत देख पड़ता है—हम घबड़ा कर खडे हो जाते हैं आगे बढ़ने का साहस हम में नहीं। जहा पैदा होते हैं वहा उसी स्थिति में—अपने पीछे हम कोई लपट नहीं छोड़ जाते।

क्यों? इस लिये कि हमने जीवन के साथ विद्रोह किया है। ज़िन्दगी क्या है? क्यो है? कैसे है? जीवन का रहस्य क्या है? इनके समझने के लिये हमने जीवन के उपकरणो का विश्लेषण नहीं किया। हम अपने मास और रक्त की चिन्ता म—उसकी सीमा के आगे नहीं बढ़ सके। बात तो की हमने आदर्शवाद का—लेकिन अपने भीतर नहीं देखा वहा कितना प्रकाश और कितना अन्धकार था। हमारे भीतर जो राक्षस है उसको भोजन तो हमने खूब दिया—लेकिन वह जो देव था वह तो भूखा मर गया।

लेकिन वह जो देव है कभी मरता नहीं। भोजन और जल न मिलने पर वह कमज़ोर हो जाता है मालूम होता है कि वह मर गया क्योंकि उसकी ध्वनि तब नहीं सुनाई पड़ती जब कि वह निर्बल और

साहस हीन हो जाता है। लेकिन या ही वातावरण म परिवर्तन होता है—उस भोजन और जल मिला। लगता वह जाग उठता है—सबल होकर मनुष्य की ि न्गी की बागडोर अपने हाथ म सम्हालता है। उसका भोजन और जल क्या है? क ी कला इसी रहस्य का उद्घाटन करती है। यही कला की चरम और चिर तन सवा है। अनातोल फ्रा स ने कहा है जीवन की सम्भावना और सु दरता अपने रहस्यो का खोलना नहा चाहती। कला उ ही रहस्यो को खोल कर—ज़ि द ी के कोने कोने को प्रकाशित कर मनुष्य के भीतर जो देव है उसे भोजन और जल देती है। उसे इस योग्य बनाती है कि मनुष्य म जो कमी है—जिसकी खोज में मनुष्य इधर उधर अ धकार में टटोल रहा है और जिस चीज को खोजता है नहा पाता—वह उसे उस चीज का पता बताये या उसे उसके प्रत्यक्ष कर सके।

आज दिन हम जिसे आधुनिक सभ्यता कहते हैं—जिसमें मशीन के पुर्जा की तरह मनुष्य का सचालन हो रहा है—जिसमें मनुष्य अपने उपरी आवरण को सजाने में अपने भीतरी उपकरणों की अवहेलना कर रहा है जिसमें मनुष्य की ज़िन्दगी दुनियावी चहल प ल और धक्कम धक्का के आगे नहा बढ़ ी हमारे सुख और स ोष का अ । यहीं तक है या हमें और आगे बढ़कर—ज़ि दगी के भीतर—जो श ीर तत्व या रहस्य है उ हे समझ कर इसी समय और सीमा के निर्धारित जगत का मनु य का स्वर्ग बना देना है? बात तो कुछ असम्भव या अस्वाभाविक भी मालूम होगी क्योंकि अभिरुचि का प्रवाह निरक ा ढ़न के प्रतिकूल है—थोड़ी देर रुक कर विचार करने का भी अवसर नहीं है य यथा लहर—निकल जायेगी और ठहरने वाले पीछे पड़ जायेंगे। लेकिन मैं तो अपनी कमज़ोर—आवाज़ मे ज़रूर कहूँगा ठहरो। ठहरो! ग़लत रास्ते पर जा रहे हो ठहरो। हज़ारा वर्ष पहले उपनिषद् काल में

मनुष्य जाति ने जो अनुभव किया था—वह स देश तो सुनते जाओ।'
उपनिषद्—जीवन के सार तत्व और विकास की सीमा है जीवन की लीला मानसिक तृप्ति शान्ति की व्यापकता वेगशाली और अनन्त जीवन—यही जीवन के सन्निहित तत्व हे यही चिरन्तन विभूतियाँ है।'
[The Upanishds tell us what the essence of life is and what the Value of civilization is The play of life Satisfaction of mind fullness of peace life abundant and eternal—they are the central values of life they are the supreme values

Dr Sir S Radhakrishnan]

लेकिन यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि हम ज़िन्दगी को सब ओर से—भीतर और बाहर से, प्रवृत्तियो के चढ़ाव और उतार को देवा और राक्षसी द्वन्द्व को आशा और निराशा के सम्मिलन को लालसाओ और इच्छाओ के मरुस्थल को होनी और अनहोनी की रंगशाला को देख न लें—समझ न लें। ज़िन्दगी की भलाई बुराई को सारी ज़िन्दगी को लेकर सुमेरु पर न पहुच जाय। संन्यासी की भूमिका में मैंने लिखा था इसकी रचना मैंने आने वाली पीढ़ी की स्वतन्त्रता के लिये की है—और इस तरह के कई और नाटको का निर्माण करूँगा। लेकिन वह स्वतन्त्रता है क्या? उसकी परिसमाप्ति कहाँ और कब होगा—इस अवसर पर बतला देना चाहता हूँ। स्वतन्त्रता की ओर हम तेज़ी से बढ़ते चले जा रहे हैं—हमारा देश उस भयंकर भँवर को पार कर रहा है जिसके बाद ही स्वतन्त्र-राष्ट्र की जन्म भूमि है। आज दिन जो शासन और राजनीति का मशीन है उसे बदल कर हम ऐसी स्थिति लाना चाहते हैं जिसके मूल में आत्मनिर्भरता अथवा स्वतन्त्रता के सार का रहस्य है। लेकिन इस स्वतन्त्रता का आधार क्या होगा? केवल

शासन की बागडोर ? देश के धन और जन पर अबाध अधिकार ? अथवा राष्ट्र के सम्पूर्ण जीवन का संचालन। जबतक यह अन्तिम बात न होगी—स्वतन्त्रता की सारी विभूति का सुख और आनन्द हम उठा सकेंगे ? लेकिन यह बात होगी कैसे ? जिन्दगी की बात जिन्दगी से पूछी जानी चाहिये। यूरप अमेरीका में विचारकों की आवाज प्रजातन्त्र के विरुद्ध उठ रही है 'Democracy has failed' प्रजातन्त्र अपने उद्देश्य को नहीं पहुँच सका। क्यों ? उनका कहना है कि सर्वसाधारण के हाथ में शक्ति तो आ गई लेकिन साथ ही साथ सर्वसाधारण की विचार हीनता संकीर्णता और नीचो कोटि के स्वार्थों के लिये सिद्धान्तों और आदर्शों की हत्या असहिष्णुता की प्रवृत्ति का भी प्रचार हुआ। सर्व साधारण के लिये समझदारी और ज़िन्दगी की भलाई बुराई का अन्दाज लगाने के लिये जब तक सही पैमाने नहीं बनाये जाते यह खतरा कहीं भी रहेगा और यह काम व्याख्यानों या प्रस्तावों से नहीं होगा। इसके लिये तो मनुष्य की सारी ज़िन्दगी को प्रकाशित करना पड़ेगा भविष्य की कला और साहित्य का यही उद्देश्य होगा। प्रायः इसी अभिप्राय से मैंने 'सन्यासी' लिखा था इस नाटक 'राक्षस का मन्दिर' की रचना की है और मेरे आने वाले नाटक भी इन्हीं विचारों पर अवलम्बित रहेंगे।

शायद इस नाटक 'राक्षस का मन्दिर' में मैंने अपना नौ सेट बेदर्दी के साथ इस्तेमाल किया है। मुझे सन्देह हो रहा है मेरे थोड़े या अधिक पाठक मुझ पर क्षुब्ध हो उठेंगे। मुमकिन है वे यह भी कहें कि मेरी यह रचना अश्लील या संहारक हो गई। उनका यह सब कहना किसी अंश तक ठीक भी होगा। लेकिन इसका उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं मुनीश्वर और रामलाल पर है—अशगरी और ललिता पर है। अथवा समाज के उस अधिकांश भाग पर है—जिसके मुख्य उपकरण मेरे नाटक के ये चरित्र हैं। मुनीश्वर उस समुदाय अथवा प्रवृत्ति की उस आधुनिक लहर

का प्रतिनिधि हे जिसमें बुद्धि और तर्क के आगे और किसी भी वस्तु को स्थान नहीं। यदि मुनीश्वर का जीवन समाज अथवा ससार के बाहर नहीं—तो मेरी कला किसी पहलू से भी दूषित नहीं कही जा सकती। मुनीश्वर के भीतर विवेक और प्रवृत्ति का जो द्व द मुझे देख पड़ता है आज दिन शिक्षित समुदाय की वही सबसे बड़ी समस्या है— To be or not to be is the problem अभी समाप्त नहीं हुआ—कभी समाप्त भी होगा या नहीं—सन्देह है। मुनीश्वर के भीतर तो इसका समाप्ति नहीं हुई—आगे का ससार भी इस चक्र से शायद न निकले मनुष्य की प्रवृत्तिया उसे एक ओर ले जाना चाहेंगी—उसका विवेक दूसरी ओर—उसका देवी और राक्षसी द्व द किसी न किसी रूपमें सदैव चलता रहेगा।

तब ? कुछ नहीं जो है रहेगा—रहना भी चाहिये। ज़रूरत है समझ जाने की। जिन चीज़ो को हम बुराई भलाई सुख दुख पाप पुण्य या स्वर्ग नरक कहते हैं उनमें समञ्जस्य पैदा करने की—उनका भेद मिटा देने की। अपने बनावटी पर्दों को [जिनका काम है हमारे निन्दनीय की छिपाये रखना] उठा देने की अपने हृदय और अपनी आत्मा को आकाश की तरह विस्तीर्ण स्पष्ट। उसमे हमारे भीतर जो कछ है नक्षत्रों की तरह सब किसी को देख पडे। इसी में हमारा कल्याण है। Privacy is sin टालसटाय ने शायद इसी मतलब में कहा था !

क्षुब्ध होने की कोई जरूरत नहीं है—अगर जरूरत हो भी तो मेरी लेखनी से क्षुब्ध न होकर अपनी जिन्दगी से क्षुब्ध होना अच्छा होगा। उपभोग और आनन्द में अन्तर है—जिन अभागों ने उपभोग को आनन्द समझ रक्खा है, जिनके सदाचार का स्वरूप सड़क पर दूसरे तरह का है और कमरे में दूसरे तरह का यह नाटक मैंने उन्हीं के

लिये—उ ही की मुक्ति के लिये लिखा है। अभी तो वे इस बात के क़ायल नहीं होगे—लेकिन मेरी आशा तो भविष्य में है—मुझे इसकी चि ता नहीं। कला की सफलता इन्द्रियों को सुख देने में नहीं—मनुष्य के भीतर पश्चाताप पैदा करने में है—अगर मेरा यह नाटक किसी भी व्यक्ति के भीतर पश्चाताप पैदा कर सकेगा तो मैं समझूगा कि मेरा उद्देश्य पूरा हो गया—और यह आश्चर्य होगा।

कहीं भी ऐसी जिन्दगी नहीं जिसमे कोई न कोई बुराई न हो। हम लोग जी रहे हैं केवल जि दगी को निगल कर और विचार जो कि रखत एक कार्यविधि है उस निर्दयता या असहिष्णुता से छुटकारा नहीं पा सकता जिसका मेल सभी तरह की कार्य विधि में देख पड़ता है। विचार ऐसा हो नहीं सकता जिसमें कोई न कोई खतरा न हो। कोई भी विचारधारा जिसका प्रवाह रोका नहीं जा सकता नि दा आघात अथवा अपवाद से छुट्टी नहीं पा सकती। भविष्य का सदाचार प्रारम्भ में सब से बड़ा दुराचार समझा जाता है। भविष्य के सम्बन्ध में न्याय करने का अधिकार हमको नहीं है। अन्त में अनातोले फ्रा स के इन शब्दों में अपनी भूमिका समाप्त कर आशा करता हूँ कि पढ़ने वाले मेरी इस रचना को सहानुभूति के साथ देखेंगे। सहानुभूति के साथ इस लिये कि इस तरह उ हें समझने मे आसानी होगी वे मनुष्य की सीमा को अच्छी तरह देख सकेंगे।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

पात्र-सूची

रामलाल—	वकील
रघुनाथ—	रामलाल का लड़का
मुनीश्वर—	रामलाल का मित्र
मिस्टर बेनर्जी—	मुनीश्वर का बाप
दौलतराम—	रोजगारी महाजन
भवानीदयाल—	दौलतराम का लड़का
महेश, जगदीश, घनश्याम	कालेज के विद्यार्थी

थानदार, सिपाही, नागरिक, मल्लाह—इत्यादि।

स्त्री पात्र

असगरी—	रामलाल की वेश्या
दुर्गा—	मुनीश्वर की स्त्री
ललिता—	रघुनाथ की प्रेमिका
मुन्नी—	ललिता की छोटी बहन
सुखिया—	ललिता की दासी

पहला अंक

[आधी रात ! रघुनाथ के पढ़ने का कमरा । मेज़ पर लेम्प जल रहा है । रघुनाथ कमरे में गुन गुनाता हुआ टहल रहा है । कमरे के बाहर बरामदे में कुछ आहट मालुम हो रही है । रघुनाथ झांक कर बाहर की ओर देखता है—फिर तेज़ी से लौट कर कुर्सी पर बैठ कर कुछ लिखने लगता है । अशगरी का प्रवेश । अशगरी धीरे धीरे पैर दबा कर चलती है—रघुनाथ की कुर्सी के पीछे खड़ी होती है दाये हाथ से रघुनाथ की दोनों आखे दबाती हुई बाये हाथ से मेज़ पर से कागज़ उठा लेती है ।]

रघुनाथ—समझ गया—[छुड़ाने का प्रयत्न करते हुये] छोड़ दो । [अशगरी और भी ज़ोर से उसकी आखे दबा कर अपने बाये हाथ का कागज झुक कर पढ़ने लगती है धीरे से गाती हुई]

अशगरी—प्रेयसी के वे बिखरे केश,

मान के अवसर के वे भाव,

मिलन की प्रथम रात्रि क वेश—

अयँ ! यह तुम्हें कैसे मालुम हुआ ?

[कुछ और नीचे झुक जाती है । उसका गर्दन रघुनाथ की गर्दन से सट जाती है ।]

रघुनाथ—अच्छा मत छोड़ो । मैं छुड़ाऊगा भी नहीं ।

अशगरी—[कागज मेज़पर रखती हुई] उफ! आधी रात को जागकर तुम इस तरह कलेजा निकाल कर कागज पर रखते हो! इसी लिए इस साल फेल हो गये। देखो मैं तुम्हारे बाबू जी से कहती हूँ कि नहीं। पढना लिखना तो सब हवा हुआ। आधी रात को कविता? प्रेयसी मिलन की प्रथम रात्रि। तुम्हारी तबियत सचमुच चाहती है? अगर चाहती हो तो कहो तुम्हारे बाबू जी से कह दूँ तुम्हारी शादी। मैं डरती हूँ तुम्हारे ही ऐसे लोगो को कन्जम्पशन होता है। यह वक्त जागने का है? सारी दुनिया सो रही है।

रघुनाथ—जाओ तुम भी सो रहो—मुझे समाप्त कर लेने दो।

अशगरी—क्या?

रघुनाथ—[कागज पर हाथ रखकर] यही दो लाइन और है।

अशगरी—तुम्हारे सिर पर तो जैसे कविता का भूत चढ गया है—इस वक्त आधी रात को—

रघुनाथ—हाँ चढ गया है—जाओ सो रहो—लिखने दो।

अशगरी—चढ गया है, तो उसे उतार डालो— जब तक तुम सो नहीं जाते—मुझे नींद नहीं आती।

रघुनाथ—देखो तंग न करो। खतम कर सो रहूँगा। जब तक लिख नहीं लूँगा तबियत बेचैन रहेगी।

अशगरी—चलो मैं तुम्हारी तबियत ठीक कर दूँगी—[मुस्कराकर] उसकी दवा मेरे पास है। [रघुनाथ के गले में बाहें डाल देती है ।]

रघुनाथ— [उसको बाहें निकाल कर झुंझला कर खड़ा होता है] इसका मतलब ? तुम मेरे बाप की मेरे सामने हो तुमसे मैं कई बार कह चुका तुम अपनी आदत नहीं छोड़ती हो। मेरी जिन्दगी क्यों खराब करोगी ? तुम्हारी ओर मैं उस नजर से देखूँगा ? है तुम्हें उम्मीद ?

अशगरी—मुझे तो है—जरा मेरी ओर देखो।

रघुनाथ—तुम चली जाओ यहाँ से नहीं तो मैं

[अशगरी मेज़ पर से वह कागज़ उठाकर जाना चाहती है। रघुनाथ तेज़ी से झपट कर उसे पकड़ता है। छीना झपटी में कागज फट जाता है। अशगरी आलमारी से उड़क कर गिरते गिरते बचती है। रघुनाथ के पिता रामलाल का प्रवेश। रामलाल कुछ आगे बढ़कर खड़े होते हैं—इधर उधर देखने लगते हैं। अशगरी सकोच से आलमारी की आड़ में मुह कर खड़ी होती है। रघुनाथ नीचे जमीन की ओर देखने लगता है।]

रामलाल—मुझे यह सन्देह हो रहा था रघुनाथ! [सिर हिलाता है]

रघुनाथ—कैसा सन्देह ?

रामलाल—तुम नहीं जानते कैसा सन्देह ? आज से—मुझसे तुम्हारा कोई वास्ता नहीं। तुम अपने ही लड़के हाईकोर्ट की
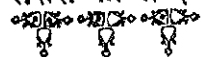
वकालत रोज की प्रतिद्वन्दिता शरीर का खून सूख गया— तुम्हारे लिये।

रघुनाथ—मैं ने किया क्या मैं तो नहीं जान

अशगरी—[घूमकर] तुम नहीं जानते ? तुमने क्या किया मेरे साथ ? मैं तुम्हारे बाप के लिये हूँ तुम्हारे लिये नहीं। तुम्हारे ऐसा लड़का दुश्मन को भी न पैदा हो।

रामलाल—[क्रोध से दाँत पीसते हुये] हरामजादे ! अब चल कर कालेज मे मौज उड़ाना। पाँच सौ रुपया तुम्हारी पढाई का खर्च भीख न मगवाया तो असल नहीं। तबियत चाहती है गोली मार दूँ। [अशगरी से] तुम यहा कब से हो।

अशगरी—दो घटा हो गये हुजर—जाने नहीं पाती थी।

रामलाल—कैसे जाने पावो मैं ने दूध पिला कर साप जो पाला है।

रघुनाथ—आप को भ्रम हो गया है—सुनिये सब बाते साफ कर देता हूँ।

रामलाल—चुप रह बेहया। मैंने सब अपनी आँखों देखा है। क्या सफाई देगा तू। [रघुनाथ क्रोध से अशगरी की ओर देखता है]

अशगरी—क्या हो गया ? थोड़ी देर पहले मैं मीठी थी अब कड़वी हो गयी ? आदमी कितना जल्दी बदल जाता है। अब मुझे लैला न कहोगे ?

रघुनाथ—यह वेश्या आप को धोखे में डाल रही है।

अशगरी—वेश्या ? माँ—बाप, भाई बहन, दीन और ईमान—सब छोड़ कर यहाँ आई इसी ईनाम के लिये ? यही मरी इज्जत है ? [रामलाल से] हुजूर याद है आपको कितनी मुहब्बत—कितना भुलावा देकर आप मुझे यहा ले आये थे ?

रघुनाथ—तुम यहाँ आई क्यों ?

अशगरी—कहूँ हुजूर। [रामलाल की ओर देखती है]

रामलाल—निकल जावा शैतान। इस घर से तरा कोई नाता नहीं।

रघुनाथ—बस अब मैं खुशी से यह घर छोड़ दूंगा। ठीक है यह वेश्या रहे लड़का रह कर क्या करेगा—

[रघुनाथ का प्रस्थान]

रामलाल—[अशगरी को छाती से लगा कर] रंज मत हो। जब तक शरीर में प्राण है तुम्हे छोड़ नहीं सकता। मुहब्बत और भुलावा ? उसमें सदेह न करना। दस हजार रुपये महीने की वकालत-तुम्हारे लिये है। जा तुम्हारे सुख का काटा बनगा उसे फूक दुगा चाहे कोई हो।

[अशगरी दोना बाहें रामलाल के गले में डाल कर सिसक सिसक कर रोने लगती है ?]

रामलाल—[उसकी आखें पोछते हुये] चुप रहो। कह तो दिया—तुम्हीं मेरा सारी दुनिया हो। मुझे लड़का नहीं चाहिये—कोई नहीं चाहिये। तुम रहो और मैं रहूँ—मेरा स्वर्ग

अशगरी—अपने पाप का फल पा गई। अब छुट्टी दे दो चली जाऊँ। नाचना गाना हमारा काम है। उसी से गुजर हो जायगा। रात दिन की यह जलन! यहा न आई होती तो शहर का बाजार मेरे हाथ में

रामलाल—[उसके सिर पर हाथ रखकर] तुम्हारी कसम खा कर कहता हूँ—उस शैतान का अब इस घर में पैर न रखने दूंगा। एक ग्लास लाओ।

अशगरी—क्या ?—

रामलाल—मैं क्या पीता हूँ ?—मरी तबियत नहीं पहचानती इतने दिनो तक

अशगरी—इस समय ? आधा रात को

रामलाल—अब समय का ख्याल नहीं रहा। तुम पिलाती जावो मैं पीता जाऊँ—दुनिया एक ओर रहे और हम दानो एक ओर

अशगरी—इस वक्त नहीं तबियत खराब हो जायेगी।

रामलाल—तबियत खराब ? मैंने एक एक कर सभी रस्सिया काट डालीं—आज आखिरी रस्सी काटी है—रघुनाथ

को निकाल कर—अपन लड़के को लाओ दूर न करो। अपने हाथो से पिलाओ। मेरी जिंदगी के दो हिस्से हैं—एक तुम हो और दूसरा शैम्पियन। अब ता मेरी तबियत अच्छी रहेगी तब, जब ये दोनो एक साथ रहे। [अशगरी का कधा पकड़कर ज़ोर से हिला देता है अशगरी गनगना कर मेज़ के सहारे खड़ी होती है।] तुम बहुत जल्दी कापन लगती हो।

अशगरी—क्या करू ? जब छू लेते हो—सारी देह गनगना उठती है। तुमन अपनी सारी रस्सिया काट डालीं मेरे लिये मैने तुम्हारा सब कुछ

रामलाल—तुम्हारी रस्सी सबसे मजबूत है

अशगरी—यह तो फजूल कह रहे हो। सिवा शराब पिलाने के और मै किस काम की ? करीब करीब पाच साल तुमने मुझे कभी मुहब्बत से नहीं पकडा।

रामलाल—मुहब्बत से पकड़ा नहीं जाता अशगरी ! मुहब्बत से छोडा जाता है !

अशगरी—हूँ तो रघुनाथ को मुहब्बत से छोड़ा है ? शायद

रामलाल—अशगरी ! कुछ पूछो मत। चुपचाप देखती चलो। दुनिया एक तमाशा है—देखते सभी हैं कोई समझ नहीं पाता। यही होता रहा है, यही हो रहा है और यही होगा। दुनिया ऐसी ही हमेशा की है न कभी इससे अच्छी थी और न बुरी हो

रही है। जो इसे समझता नहीं, कहता है कि यह बुरी हो रही है, इसलिए कि इसके पहल की दुनियाँ उसन देखा नहीं। लेकिन जो इस समझता है—वाह क्या पूछना [मारे उत्साह और आनन्द से कुर्सी पर से उछल पड़ता है। अश्गरी छिपक कर पीछे हटती है] क्यों क्या हुआ ?

अश्गरी—मैं तो डर गई—रहते रहते हो जैसे पागल हो उठते हो।

रामलाल—इसका मतलब यह कि जिस समय मैं सबसे ज्यादा होश में रहता हूँ—तुम मुझे पागल समझती हो। खैर—जाओ ल आओ—यह सब तो [अश्गरी का प्रस्थान—] [रामलाल का उठना। कमरे मे इधर उधर आसूदगी के साथ टहलना। दोनों हाथों से आलमारी पकड़ना और नीचे ज़मीन की ओर देखने लगना। ज़रा सा करवट होते हुए आलमारी पर सिर टेक देना मुह का छिप जाना चमेली की माला पहने मनोहर का प्रवेश रामलाल का उसकी ओर घूमकर देखना हाथ बढ़ाते हुए।]

रामलाल—देखा तुमने—[मनोहर का हाथ अपने हाथ मे ले लेते है]

मनोहर—इसमे क्या पूछना है आप

रामलाल—अजी यह सब तमाशा है, सारी दुनिया तमाशा है मैं तो इसे सीरियस नहीं समझता [कुरसी पर बैठते हुए]

बैठा—[मनोहर मेज पर बैठता है। रामलाल उसके हाथ को झटका देते हैं—मनोहर का हाथ ऊपर उठकर ज़ोर से मेज़ पर गिर पड़ता है।]

मनोहर—ए स [हाथ दबाते हुए]

रामलाल—इतने पर

मनोहर—तब क्या मेरा शरीर पत्थर—

रामलाल—[मनोहर की चमेली की माला हाथ में लेकर] आज बड़ी तैयारी से चले।

मनोहर—यह तो हम लोगोका नियम है जिसका विवाह नजदीक आता है उसे फूल की माला पहननी पड़ती है।

रामलाल—अय तुम विवाह ?—

मनोहर—हाँ [मुस्करा उठता है]

रामलाल—कब ?

मनोहर—पता नहीं लेकिन जल्दी—[कुछ सोचकर] लेकिन आपने आज गजब किया—रघुनाथ

रामलाल—मैं ने तुमसे कहा था—

मनोहर—लकिन बात कौन सी आ पड़ा—

रामलाल—मैं ने अशगरी को भेज दिया मौका मिल गया।

मनोहर—लेकिन रघुनाथ से कोई वैसी बात तो शायद न आपने उसे सिखला

रामलाल—वैसी बात क्या ? इस वक्त आधी रात को अगर अशगरी और रघुनाथ या कोई भी जवान स्त्री पुरुष मिलगे तो काइ न कोइ बात उस मतलब का हो ही जायेगी। मै ने अशगरी से कहा देखो रघुनाथ सो रहा है। वह नीचे यहाँ आई-मैं जानता था वह जाग रहा था-मैं भी धीरे से चला आया। मुझे इस बात का सदेह पहल से ही था कि रघुनाथ और अशगरीमें—

निपटारा हो गया अच्छा हुआ। अपने को बचाने के लिए दोनो न एक दूसरे का मुलजिम कहा—इस तरह दोना ही बच गये।

मनोहर—लकिन अब—

रामलाल—मैं वह बाप नहीं हूँ जो भ्रम में आकर अपने लड़के की जि दगी खराब करता है—उसके दिल और दिमाग को गुलामी के लिये तैय्यार करता है। मैं यक्ति की स्वत ता का पक्षपाती हूँ, हर एक आदमी अपने रास्त पर चले—इसकी जरूरत नहीं कि जो दूसरे कह—वह करे। [कुछ सोचकर] रघुनाथ के लिये मैं भी दूसरा हूँ और तुम भी उसे दुनिया म अपना रास्ता निकालना चाहिय।

मनोहर—लकिन इसमे बुराई—शायद कहीं वह ऐसा काम कर बैठे जिसस आपको

रामलाल—[मुस्करा कर] मुझे क्या ? आराम करेगा तो वह फासी पड़ेगा तो वह, बुराई भलाई की बात [कुछ

सोचने की मुद्रा में ऊपर देखकर] यह तो कायरों का काम है। जो जिन्दगी का सामना बहादुरी के साथ नहीं कर सकते। मैं ने रघुनाथ को अपने जेलखाने के बाहर कर दिया है। फिर किसी जेलखाने मे पड़ेगा तो उसकी मूर्खता होगी। मेरे पास शराब और वेश्या दोनों इसका असर उस पर था तो ऊपरी तौर पर वह मेरी इन दोनों बातों को बुरा समझता था—लेकिन वास्तव में उसने मेरी बोतल भी नहीं छोड़ी और अशगरी को तो खैर यह अच्छा हुआ। उसे भी होश

[मनोहर उनकी ओर ध्यान से देखने लगता है। रामलाल हथेली पर सिर रख कर दायें हाथ की उंगली से मेज़ खटखटाने लगते हैं। अशगरी का प्रवेश। अशगरी नीचे सिर किये मेज़ पर बोतल और शीशे की ग्लास रखती है बाहर की खिड़की से होकर नीले रङ्ग का टार्च लाइट का फोकस दूसरी ओर की दीवाल पर पड़ता है। मनोहर उसे देख कर चौंक पड़ता है। रामलाल की बाँह हिला कर उधर संकेत करता है। रामलाल भी दीवाल पर नीली रोशनी देखते हैं।]

रामलाल—ऊपर जाओ कोई शायद—पुलिस

मनोहर—[कोट की जेब से पिस्तौल निकाल कर] मैं तैयार हूँ चाहे जो हो—

रामलाल—[सिर हिला कर] बेवकूफ़ी ऊपर जाओ—दुनिया को समझो—
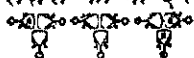
मनोहर—कायरता ?

रामलाल—बहादुरी की ढोंग—ऊपर जाओ [असगरी से] इन को ऊपर ले जाकर रघुनाथ की चारपाई पर सुला दो। रघुनाथ के कपड़े पहना देना। मैं सब देख लूंगा। जल्दी करो।

[मनोहर और असगरी का दूसरे कमरे में प्रस्थान—बाहर के किवाड़े पर धक्का धाय की आवाज़ फट फट कर किवाड़ खुल पड़ते हैं। सी आई डी इन्सपेक्टर मिस्टर बनरजी का प्रवेश। रामलाल उठ कर हाथ बढ़ाते हैं दोनों हाथ मिलाते हैं। मिस्टर बेनरजी कमरे में इधर उधर ध्यान से देखने लगते हैं। दोनों कुर्सियों पर बैठते हैं]

मि बैनरजी—मुझे आप से कुछ पूछना है।

रामलाल—[शीशे की ग्लास में शराब उड़ेलते हुए] क्षमा कीजिये—थोड़ी दूर—मेरा टाइम बीत रहा है। [ग्लास बैनरजी के पास रख कर] हां लीजिए। [बोतल मुंह लगा कर एक घूट पीते हैं—खांसी आ जाती है—मुंह से शराब निकल कर मेज पर हवा के धक्के के साथ फैल जाती है। कई बूंद मिस्टर बेनरजी के मुंह पर पड़ती है मिस्टर बेनरजी घबड़ाकर नाक सिकोड़ कर उठते हैं—जेब से रूमाल निकाल कर मिस्टर बेनरजी का मुंह पोंछते हैं।] मुझे अफसोस है। [मिस्टर बेनरजी उन्हें बायें हाथ से धक्का देते हैं। रामलाल की बोतल ज़मीन पर गिर कर चूर चूर हो जाती है। शीशे का एक टुकड़ा रामलाल के पैर में धस जाता है। रामलाल पैर मेज पर रख कर शीशा

निकालते हैं—खून बहने लगता है। रूमाल से पैर दबा कर बैनरजी की ओर देखते हुए] जरा सा और ठहर जाते—मैं पी लेता उफ—सब नष्ट हो गया—

मिस्टर बेनरजी—पुलिस बाहर खड़ी है।

रामलाल—जाने दीजिये—आइये पहले—[ग्लास बढ़ाते हुए] यह लीजिये—फिर पुलिस देखा जायगा!

[अश्गरी का प्रवेश] दो बोतल और लाओ—तजी से—
[अशगरी का विस्मय से देखते हुये प्रस्थान]

मिस्टर बेनरजी—यह कौन है—

रामलाल—यह तहजीब के खिलाफ है—एक स्त्री के विषय में पूछना वह मरी वेश्या तुम मेरे मित्र हो

मिस्टर बैनरजी—आप और वह बहुत फ़रक है।

रामलाल—आप की यह सहानुभूति—मेरे लिये या उसके?

मिस्टर बैनरजी—दोनों के लिये—

रामलाल—किन्तु किस पर विशेष?

मिस्टर बैनरजी—अवश्य ही उसके लिए—आप का क्या—आप को उसे दूसरों के साथ मनोविनोद तो करने ही देना चाहिये!

रामलाल—[मिस्टर बैनरजी के कन्धे पर हाथ रख कर] ओह! जरूर—मेरा बोझ हलका हो जायगा। वह सतुष्ट कैसे गैर

मुमकिन है। [होठ निकाल कर] मुझ मे प्रेमकरने की शक्ति नहीं—उसे आवश्यकता है—यौवन की—अगर आप उसे सतुष्ट कर सके—प्रेम कर सके और मुझ—हा—इस बोझ का कुछ तो हलका कर सके।

[मिस्टर बैनरजी ह्विसिल देते है—कई कान्सटेबलों के साथ पुलिस सब इंसपेक्टर का प्रवेश]

मिस्टर बेनरजी [सब इंसपेक्टर से] उनसे अभी बाहर ठहरने को कहिये—आइये—[ग्लास बनाते हुए] लीजिये—बैठिये—यहाँ—[नज़दीक ही रखी हुई कुर्सी की ओर संकेत करते हैं]

सब इंसपेक्टर—मैं तो नहीं—

मिस्टर बनरजी—ओह—आप ब्राह्मण—तब आप जाय। कोई जरूरत नहीं—

[सिपाहियों के साथ सब इंसपेक्टरका प्रस्थान रामलाल से] आप के यहा मनोहर आया है—वह भयकर क्रान्तिकारी है। उसे पकड़ने के लिये—

रामलाल—अय कब? अभी तो आपने एक घूंट भी नहीं और नशा आ गया।

मिस्टर बैनरजी—नही जनाब मैं खूब जानता हूँ।

रामलाल—[उठकरखडे होते हुए] तब मैं जाकर पुलिस को रोक देता हूँ—अच्छा हो मेरे घर की तलाशी हो जाय। इस वक्त कोई

जानेगा नहीं। मेरी इज्जत भी बच जायेगी। [दरवाज़ा की ओर बढ़ते हुए] आप का स देह मिट जाय।

मिस्टर बनरजी—नहीं—कोई स देह नहीं मुझे लौटिये—

रामलाल—[अपनी जग पर लौट कर बैठते हुए] आपके पास इतनी समझ नहीं कि जिसका सारा दिन हाईकोर्ट म 'माई लार्ड' 'माई लार्ड' कहते बीत जाता है और रात जिसकी शराब और वेश्या मे वह इन सगीन बातो मे पड सकता है—सोचिये तो समझिये तो महाशय ?

मिस्टर बनरजी—दुनिया में कौन क्या कर सकता है—कहा नहीं जा सकता।

रामलाल—तब तो आप भी क्रान्तिकारी हो सकते हैं—जब दुनिया ऐसी धोखे की बनी है—हो सकते हैं न ?

मिस्टर बैनरजी—हां अगर मौका पड़े—कब कौन क्या कर सकता है—कहा नहीं जा सकता है।

रामलाल—फिर इस आधी रात को किसी के प्राण के पीछे क्यों पड़े हैं ? दुनिया की ओर से नज़र उठा कर एक बार ईश्वर की ओर भी देखिये।

मिस्टर बनरजी—मैं इस लायक नहीं हूँ—और मुझे ईश्वर में विश्वास भी नहीं—
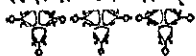
रामलाल—तब आप के जीने का मतलब ? जो ईश्वर के लिये नहीं जीता वह,—

मिस्टर बैनरजी—यह सब बात आप को शोभा नहीं देती—आप—

रामलाल—क्योंकि मैं शराब पीता हूँ—मैंने वेश्या रक्खी है—मेरे लिए ईश्वर आप क्या समझते हैं ? जो कीड़े नाबदान में [हाथ की उंगलियों को हिलाते हुए] कलमल कलमल किया करते हैं—उनके लिये कोई आशा नहीं ? वे वैसे ही रहेंगे । [असगरी का प्रवेश—असगरी मेज़पर दो बोतल रखती है] जाओ [असगरी का प्रस्थान । रामलाल अपना बायां हाथ मेज पर हथेली ऊपर की ओर रखते हैं दायें हाथ से मेज पर से चाकू उठाकर ज़ोर से हथेली में मारते हैं—हथेली के आर-पार चाकू हो जाता है । मेज़ पर केहुनी टेक कर हाथ ऊपर उठाते हैं—खून की धार निकल पड़ती है ।]

मिस्टर बैनरजी—हां—हां—क्या करते हैं—राम राम [मुंह फेर लेते हैं ।]

रामलाल—[बैनरजी के सिर पर हाथ रखते हैं ।] इधर देखिये । काम तो इतना बड़ा लिया आपने और दिल आप का [मुस्करा कर] जिन्दगी के जेलखाने के बाहर देखिये कुछ है या नहीं ? कैसे मुंह फेर लिया आप ने ? क्यों कि आप सह नहीं सके । लेकिन जिनको आप फांसी दिलाते हैं और ईनाम और

तरक्की लकर खुश होते हैं—उस समय यह दिल कहा रहता है ? अपनी बात मैं आप स कहता हूँ सुनिय—मुझे इसकी तकलीफ जरा भी नहीं है। मैं अभी जीना चाहता हूँ— नहीं तो एक क्या सैकड़ा छुरी अपनी देह मे मारता—आप की आखो मे सुर्मा लगा दता तब आपको दख पड़ता। मै तो जो कुछ भी करता हूँ ईश्वर से आज्ञा ल लेता हूँ—वह देखिये [खिड़की को ओर हाथ उठाकर] वह भगवान खड़े है—मुस्करा रहे हैं—मैं शराब पीता हूँ उनके लिये—सब कुछ उनके लिये—सुखदुख मेरा नही उनका है—वे स्वय सब चीजों के साथ समझौता कर लें मुझे क्या ? [गला रुध जाता है]

मिस्टर बैनरजी—चाकू निकाल लीजिय

रामलाल—फायदा—अब तो जो होन को हो चुका—कल डाक्टर को बुलाकर बैन्डेज का इ तजाम कर निकलवा लूगा—[हाथ आगे बढ़ा कर] खाच लीजिय न तेजी से—

मिस्टर बैनरजी—मुझसे तो नहीं होगा—

रामलाल—कैसे हो—आप से कक और बिस्कुट खाना हो सकेगा—चाय, शराब—फर्स्टक्लास होटल, मोटर, वटिंगरूम, ट्रेन का कम्पार्टमेन्ट। जिसे आप बड़प्पन समझते हैं—वह है नहीं—आप क्या देख सकेंगे ? दुनिया के गये गुजरे आदमी जिन्दगी का मजा आप को क्या मिलगा ? आपक पास जिन्दगी

ह ही नहीं। आप ने कभी वह गाना सुना है, [छाती पर हाथ रख कर] जो यहा, आदमी के दिल में होता है जिसमें एक के बाद एक और इस तरह हजारों जगत डूब जाते हैं और आदमी सब कुछ लाघ कर, समय और समाज के ऊपर सिर उठा कर ईश्वर के सामने खड़ा होता है और कहता है "तुम्हारी दुनियाँ मुझे सम्हाल नहीं सकती—अब मुझे अपनी जगह दो।"

मिस्टर बनरजी— [दोनों हाथ जोड़कर] मुझे क्षमा कीजिये— [मेजपर सिर रख देते हैं।]

रामलाल—[उनके सिर पर हाथ रख कर] इधर देखिये [मिस्टर बेनरजी उनकी ओर देखते हैं बाया हाथ आगे बढ़ा कर] इसे खींच लीजिये। [बेनरजी उनका हाथ पकड़ते हैं लेकिन पकड़ते ही बेनरजी का हाथ काँपने लगता है] रहने दीजिये आप से नहीं हो सकेगा। आप के दिल में वह कमजोरी भरी है जिसे दुनिया के बच्चे दया कहते हैं सिम्पैथी कहते हैं—रहम कहते हैं इसी तरह उसके लिये हजारों नाम दे डाले गये हैं। आदमी की कमजोरी खूबसूरत हो उठी है। दया और हत्या एक ही चीज के दो नाम दोनों ही बुरी। आदमी किसी को चार पैसा देकर सोचता है मैंने आज किसी की भलाई की यह नहीं सूझता मुख को कि उसने किसकी भलाई की, अपनी या दूसरे की। इसी तरह हत्या कर यह नहीं सोचता है कि उसने अपनी हत्या
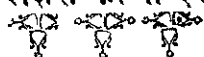
की या दूसरे की। असगरी! [जोर से बुलाते हैं—असगरी का प्रवेश] भेजो मनोहर को—[असगरी का प्रस्थान] बुला देता हूँ अब पकड़िये।

मिस्टर बनरजी—बस बहुत हुआ—मैं पागल हो जाऊँगा।

रामलाल—आप होश में तो कभी थे ही नहीं—अब शायद खैर मनोहर को पकड़िये—आप को जो काम करना है।

[मनोहर का प्रवेश]

रामलाल—क्यों तुम्हारी दाढ़ी मूँछ नकली थी? पकड़िये साहब यह आ गये। इन्होंने मुझे भी धोखा दिया—मैं जानता था—मैं सब जानता हूँ—लेकिन फजूल। [मनोहर पिस्तौल निकालकर बेनरजी की ओर निशाना ठीक करता है।]

मिस्टर बनरजी—हाँ—मारो बाबू—कोई हर्ज [ध्यान से देखकर] मुनीश्वर! [मनोहर चौंक पड़ता है—उसके हाथ से पिस्तौल छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ता है रामलाल आश्चर्य से दोनों की ओर बारी बारी देखते हैं।] मुनीश्वर! उठा लो पिस्तौल मारो मुझे—मैं आज चार महीने से तुम्हारे पीछे पड़ा हूँ तुम्हें फाँसी दिलाने के लिये।

मनोहर—चलिये मैं सब कुछ अदालत में स्वीकार कर लूँगा। अब आपको अधिक कष्ट देना मैं—[पिस्तौल उठाकर जेब में रखता है।]
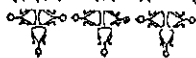
मिस्टर बैनरजी—अब क्या इससे अधिक कष्ट दोगे ?—यह तो तुम जानते हो न कि मैंने यह काम करना क्यों शुरू किया ? तुमने अभी मुझपर पिस्तौल उठाई थी। मैं समझता हूँ मुझे पहचान कर

मनोहर—हाँ जानता हूँ। आपको मैं पहचानता था

मिस्टर बैनरजी—तब—? [रामलाल से] यह मेरा लड़का है—दो वर्ष हुआ घर छोड़कर भाग गया। तीन महीने के बाद एक पत्र मिला। उसमें लिखा था आपके लड़के मुनीश्वर बैनरजी की हमारे पार्टी ने हत्या की है। लाश फलां गाँव के पास फलां नदी के किनारे फलां जगह गाड़ी गयी है। उसने हमारे पार्टी के साथ विश्वासघात किया था'। मैं वहां गया। जमीन खोदी गई। एक सड़ी हुई लाश निकली। मैंने समझा मेरा मुनीश्वर यही है तब से—हे भगवान्। मेरे आसू क्या करेंगे इस पार्टी का पता लगाना चाहिये जिसने मेरे एकलौते लड़के की । मुनीश्वर इधर आओ तुम्हारे लिये मैं राक्षस बना था—हो सका तो आदमी बनूंगा। पुत्र क्या चीज है अगर तुम जानते ? [उसकी आंखों से आंसू गिरने लगते हैं] खैर तुमने तो मुझपर पिस्तौल—

रामलाल—तो आप अपने मुनीश्वर की जान लेना चाहते थे आप धन्य हैं अगर मैं भी कभी इस तरह मोह छोड़ सकता

मिस्टर बैनरजी—मैं मोह क्या छोड़ सकूँगा। आपके शब्दों में गया गुजरा आदमी। मुझे विश्वास हो गया था–इसी मनोहर ने मेरे मुनीश्वर की मैंने पूरा सबूत इकट्ठा कर लिया था। और इसमें शुबहा नहीं कि अदालत से फिर न बचते। मुनीश्वर!
[मुनीश्वर मिस्टर बनरजी की ओर निष्प्राण और रूखी आँखों से देखता है।] मैं तुम्हारा बाप हूँ जानते हो कि नहीं। [मुनीश्वर उसी प्रकार देर तक उनकी ओर देखता रहता है। रामलाल उसके पास जाकर उसके कन्धे पर हाथ रखते हैं। मुनीश्वर उसी प्रकार निश्चेष्ट खड़ा रहता है।]

रामलाल—तब—? अब कहो?

मुनीश्वर—कुछ नहीं मेरा रास्ता साफ थो का त्या

मिस्टर बनरजी—बूढ़ी माँ, जवान स्त्री, दो वर्ष का बच्चा और मेरी हालत तो। मुनीश्वर!

रामलाल—इनकी शादी हुई है?

मिस्टर बनरजी—जी हाँ—दो वर्ष का एक लड़का भी है

रामलाल—[मुनीश्वर का सिर हिलाकर] तब तुम घर जाओ। यह बहुत बड़ा पाप औरत वह भी जवान घर पर छोड़कर तुम क्या कर रहे हो?

मुनीश्वर—जो मुझे करना है?

रामलाल—आख़िरकार तुम्हें करना क्या है?

मुनीश्वर—कुछ नहीं। चुपचाप मौज—आनन्द, जो तबियत चाहे जब जिस समय

रामलाल—यह तो तुम मनुष्यता की प्रारम्भिक भाषा बोल रहे हो।

मुनीश्वर—जो हो। मैं तो दिल से चाहता हूँ—मनुष्य की वही प्रारम्भिक जिन्दगी फिर लौट आती। न कोई बन्धन न कोई चिन्ता। न धर्म न सदाचार न क़ानून, न क्रान्ति। भेद भाव का नाम नहीं सब कुछ एक रस स्वरूप एक में, जहाँ न पितृ धर्म है—न मातृधर्म—न पत्नी धर्म। न पति धर्म। जहा कर्त्तव्य है न आदर्श।

रामलाल—सपना देख रहे हो?

मुनीश्वर—सपना? कोई दिन था जब दुनिया वैसी ही थी। न ईश्वर का अत्याचार होता था न धर्म का। न मा का न बाप का न भाई का, न स्त्री का न लड़के का। वही दुनिया फिर लौट आती। [मिस्टर बैनरजी की ओर देख कर] देखिये मैं बहुत दूर अब आ गया हूँ। लौटना मुश्किल है। मैं क्रान्तिकारी हू। लेकिन अंगरेजी सरकार के खिलाफ नहीं—हर एक सरकार के राज्य करने के, क़ानून बनाने के, शिक्षा देने के धर्म और सदाचार बनाने के सभी तरीके मनुष्य को उसके भीतर की शक्तियों को दुर्बल बनाते चले जा रहे हैं। हमारी जिन्दगी के खतरे तो मर रहे

हैं लेकिन यह जि दगी ? आह, कीडा से भी बदतर। देवता का लात मार कर पिशाच की पूजा। [दूसरे कमरे के दरवाज़े तक आकर अशगरी रामलाल को सकेत करती है। रामलाल का प्रस्थान]

मि टर बैनरजी—तुम चाहते क्या हो ?—अगर यह सब बुरा

मुनीश्वर—मैं चाहता हूँ सब कोई अपनी इच्छा पर, अपने भरासे छोड़ दिया जाय।

मिस्टर बनरजी—पैदा होते ही कुयें में न फेंक दिया जाय।

मुनीश्वर—[गर्दन टेढ़ी कर छत की ओर देखता है—अगूठे और तर्जनी के बीच में अपनी ठुड्डी दबाकर] कुयें में ? अय ?—हाँ ठीक [बैनरजी की ओर देख कर] लेकिन अगर मा बाप यह कर सके, तब तो फिर उनकी मुक्ति हो जाय। आप क्या समझते हैं कि मुझे कुये में न फेंक कर आपने मेरे साथ एहसान किया ? जो आप नहीं कर सके उसके लिये ? जो आपकी कमजोरी थी—उसके लिये ?

मिस्टर बनरजी—तब चलो अपने लडके को कुये में फेंक आवो।

हाँ हा क्या कहते हैं ?—[कहते हुए रामलाल का प्रवेश—मुनीश्वर उनकी ओर देख कर मुसकराता है—रामलाल मुनीश्वर की ओर देखते हैं] तुम अभी दुनिया को समझे नहीं—जितना तुम समझते हो। दुनियाँ के समझने के लिये दुनियाँ के साथ रहना होता है।

मुनीश्वर—हश तब समझने के लिये होश कहाँ रहता है। कहीं इ जत, कहां धन, मां बाप, भाई, लड़के—बाल ये दुनियाँ का समझने देंगे ? इनसे अलग होकर दस क़दम आगे बढ़कर इनकी ओर लौट कर देखिये तब पता चलेगा। न मालूम दुनिया के पहले आदमियों ने यह जेलखाना कबूल कैसे किया ?

रामलाल—किसी ने खुशी से क़बूल नहीं किया। दुनियाँ ने कबूल करने के लिये मजबूर किया। इतने बड़े मिटिरियलिस्ट क्या बन रहे हो ? [अनरची की ओर संकेतकर] तुम्हारा शरीर इनका रक्त मांस है। जानते हो कि नहीं ?

मुनीश्वर—खूब जानता हूँ। लेकिन यह भी जानता हूँ कि वह रक्त मांस श्मशान की चीज है जलाने की गाड़ने की। मेरी नजर में उसका मूल्य बहुत कम है।

रामलाल—मैं जानता था कि तुम आदमी हो—राक्षस।

मुनीश्वर—[ज़ोर से हंसता है] हाँ—हाँ—अब आपने समझा। आप जिसे आदमी कहते हैं—वह या तो राक्षस है या देवता। आदमी ऐसी चीज न है न थी, न होगी। [अनरची उठ कर खड़े होते हैं]

रामलाल—इस लड़के का दिमाग फिर गया है। आप जाइये फिर देखा जायगा।

मिस्टर बनरजी—मुनीश्वर ! एक बार घर न चलोगे। तुम्हारे साथ मैं बहस नहीं कर सकता। इतना जानता हूँ—घर वाले तुम्हे देखना चाहते हैं। तुम्हारी मा—

[मुनीश्वर ज़मीन की ओर देखने लगता है। मिस्टर बनरजी थोड़ी देर उसकी ओर देखते हैं।]

मिस्टर बनरजी—[रामलाल से] मैं समझ नही पाता —क्या करूँ ? [रामलाल बनरजी के पास जाते हैं उनका हाथ पकड़ते हैं—उसी तरह दोनो का प्रस्थान। मुनीश्वर दरवाजे के पास तक जाता है—बाहर की ओर झाक कर देखता है—फिर लौट कर कुरसी पर बैठ कर अंगड़ाई लेता है—अशगरी का प्रवेश]

अशगरी—तुम ने यह सब मुझसे छिपा रक्खा था ?

मुनीश्वर—हां

अशगरी—क्यों ?

मुनीश्वर—कहने की कोई जरूरत नहीं थी।

[अशगरी दांतों से अपना ओठ ज़ोर से दबाती है—कुछ गिरती सी कर नीचे ज़मीन की ओर देखने लगती है]

अशगरी—[धीरे से सिर उठा कर] तो तुम चाहते—मुझे चाहते नहीं। [सिर हिलाती है]

मुनीश्वर—इसके लिये सफाई नहीं दूंगा इतना ही कहना काफ़ी है कि मैं तुमको चाहता हूँ [उसकी ओर एक टक देखते हुये]
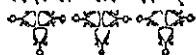
रोज हर एक घडी बराबर, सोते जागते [उठकर उसका हाथ पकड़ता है। अपनी ओर खीच कर छाती से लगाता है—मुँह से मुँह और ओठ से ओठ]

अशगरी—[अपने को छुड़ा कर] हम लोग पागल हो गये हैं।

मुनीश्वर—[उसे खींच कर छाती से लगाते हुये] नहीं होश मे हैं [अशगरी का सारा शरीर थर थर कापने लगता है। ललाट स पसीना चल पड़ता है। मुनीश्वर हाथ से उसके ललाट का पसीना पोछता है। अशगरी उसके छातीसे सिर सटा कर नीचे देखने लगती है। मुनीश्वर दाया हाथ उसकी पीठ पर फेरने लगता है—बायां हाथ सिर पर रखता है]

अशगरी—[छुड़ाने का प्रयत्न करती हुई] मैं मर जाती

मुनीश्वर—इस समय—मेरे हृदय स लग कर

अशगरी—इस समय मरने में बड़ी

मुनीश्वर—इस समय तुम अमर हो

अशगरी—मुझे मार डालो।

मुनीश्वर— बलिदान देवता चाहता है—राक्षस नहीं। मैं राक्षस हूँ।

अशगरी—देवता कौन है ?

मुनीश्वर—रामलाल जी। तुम्हे अपना सब कुछ देते हे लेते कुछ नहीं।

अश्गरी—मेरी तबियत मुझे यहाँ से कहीं ले चलो।

मुनीश्वर —कहाँ ?

अश्गरी—जहाँ जी चाहे।

मुनीश्वर—अभी मेरे लिये कहीं जगह नहीं है। राक्षस का कोई मन्दिर नहीं होता। वह जब चाहता है—देवता के मन्दिर में आजाता है। इस लिये कि देवता दयालु होता है। किसी को रोक नहीं सकता।

अश्गरी—[अपने को छुड़ा कर, कई कदम पीछे हट कर] तुम यहाँ न आया करो

मुनीश्वर—मुझे कोई रोकद। है किसी मे ताकत ?

अश्गरी—मैं उनसे कह दूगी। तुम्हे अपने यहाँ न आने दे।

मुनीश्वर—लेकिन वे मुझे रोक नहीं सकते। उनके मुह से यह बात निकलेगी नहीं।

अश्गरी—और अगर निकले ?

मुनीश्वर—हो नहीं सकता। उनका स्वभाव तुम बदल नहीं सकोगी। वे अपने घर का आबाद नहीं कर सकते। उसके लिये उन्हें दूसरों की जरूरत पड़ेगी।

अश्गरी—उन्हें तुम्हारी जरूरत नहीं है—तुम मेरे लिये

मुनीश्वर—उन्हें मेरी ही जरूरत है—जो तुम्हारे लिये तुम्हें मेरी जरूरत है कि नहीं साफ कहो।

अश्गरी—अगर मुझे तुम्हारी जरूरत न हो तो तुम आना छोड़ दोगे ?

मुनीश्वर—[अश्गरी की ओर देखते हुए] लेकिन मुझे तो तुम्हारी जरूरत है—मै कैसे जा सकूंगा ?

अश्गरी—अपनी औरतके पास चले जाओ।

मुनीश्वर—मुझे दूसरी औरत की जरूरत नहीं है—तुम्हारी—सिर्फ तुम्हारी—दुनिया मे किसी भी दूसरी औरत की नहीं।

अश्गरी—तुम मुझे भूल जाओ। [उसकी आंखोंसे आंसू निकलने लगते हैं।]

मुनीश्वर—रो क्या रही हो ?

अश्गरी—तुमसे मतलब ?

मुनीश्वर—मुझसे मतलब नहीं है ?

अश्गरी—नहीं है। मुझे मार डालो। मैं जी कर क्या करूंगी।

मुनीश्वर—कुछ करने के लिये नहीं जीया जाता। हम लोग जी रहे हैं जी रहे हैं। जीने के लिये कोई पहाड़ नहीं उठाना पड़ता।

अश्गरी—दुनिया में रहनेके लिये कोई मतलब होना चाहिये। ऐसी जिन्दगी

मुनीश्वर—कुछ नहीं सब फजूल। दुनिया में रहना ही एक मतलब। नहीं तो फिर एक डोज लिक्विड और साफ़

अश्गरी—एक डोज दे दो मुझे।

मुनीश्वर—उसके लिये तैयारी नहीं की जाती। वह तो होने को होता है ऐसे होता है कि फिर किसी को पता नहीं चलता। आपन को भी पता नहीं चलता।

[अशगरी उसके पास जाकर खड़ी होती है। मुनीश्वर उसके कंधे पर हाथ रखता है।]

अशगरी—तुम मुझे बड़ी तकलीफ दे रहे हो। अब तो मैं

मुनीश्वर तब मुझसे क्या चाहती हो ?

अशगरी—मुझे मार डालो—

मुनीश्वर—कैसे ?

अशगरी—जैसे तुम्हारी तबियत चाहे।

मुनीश्वर—अशगरी ! जिस दिन तुम्हें देखा उसी दिन से तुम्हें मार डालने की फिक्र में हूँ। एक दिन न मार डाल कर रोज कुछ न कुछ—थोड़ा थोड़ा जहर तुम्हें दे रहा हूँ। तुम पचाती चली जा रही हो लेकिन कै दिन ? किसी न किसी दिन

अशगरी—[अपना मुँह ऊपर को उठाती है—कुछ कहना चाहती है लेकिन मुनीश्वर उसके ओठ पर ओठ रख कर चुप कर देता है। रामलाल का प्रवेश। दोनों को एक दूसरे के आलिंगन में देख कर चौंक पड़ते हैं।]

रामलाल—Is this your philosophy fool ?

मुनीश्वर—yes where is the inconsistancy ?

[अशगरी का प्रस्थान]

मैं समझता हूँ आप मुझे खब जानते हैं। आखिरकार उसे तो सतुष्ट होना चाहिये। सिर्फ खाने और कपड़े से उसका काम नहीं चलेगा

रामलाल—लेकिन तुम्हें उसकी चिन्ता क्या ?

मुनीश्वर—इस लिये कि मुझे आप की चिन्ता है।

रामलाल—मेरी चिन्ता ?

मुनीश्वर—जी हाँ वह आप को मार डालेगी। उसकी भीतरी की आंधी आप रोक सकेंगे ?

रामलाल—लेकिन कहीं तुम्हीं को न मार डाले। शायद वह आंधी तुम भी न सम्हाल सको।

मुनीश्वर—मैं ? हो सकता है—लेकिन इस तो आप मानेंगे कि मैं आपसे ज्यादा सम्हाल सकता हूँ।

रामलाल—नरक के कीड़े

मुनीश्वर—हा हा [हंसकर] दुनिया उन्हीं के लिये है—स्वर्ग की तितलियों के लिये नहीं जो अपना ही बोझ नहीं एक बूंद जल पड़जाने से जिनकी पांखे टूट जाती हैं। कीड़े वे तो रेंगते रेंगते कभी चोटी पर पहुँच जाते हैं। उन्हें रेंगते जाना चाहिये—फिर तो वे जहाँ चाहेंगे घर बना लेंगे।

रामलाल—मुनीश्वर—

मुनीश्वर—कहिये— ?

रामलाल—तुम यह सब हृदय से कह रहे हो ?

मुनीश्वर—मैं हृदय से कुछ नहीं कहता। शायद हृदय से कहने की बात मेरे पास नहा है। हृदय से बच्चे कहा करते हैं—जो मचलते हैं-इठलात हैं और हठ करते हैं—समझाने से नही समझत। समझदार आदमी हृदय से नहीं कहा करत। जो जिन्दगी को समझत हैं उस हर पहलू स देखत हैं वे तो हृदय के हाथ पाँव बाध कर उस कुयें में फेंक देते हैं—कभी लौट कर उसमे झाक कर देखते भी नही।

[रामलाल उसकी ओर आश्चय और सदेह से देखते हैं। मुनीश्वर उठता है। खिड़की के पास जा कर खड़ा होता है। बाहर दूर पर नज़र फेंक कर आकाश की ओर देखने लगता है। रामलाल कर्सी पर बैठते ह। ग्लास म शराब उडेलते ह—धीरे धीरे रुककर पीते ह और जैसे कुछ सोचने लगते ह।]

मुनीश्वर—[उसा तरह आकाश देखने हुय] क्यों साहब—तारे कभी नहीं सोते ? [रामलाल उसकी ओर देखकर मुस्कराते हैं] नही सोते होंगे—क्यो सोवें ? एक, दो, तीन, चार पाच, छ, एक साथ इतने। लोग कहते हैं ईश्वर नहीं है। कैसे पागल हैं। [हाथा में अपना मुँह छिपा कर खिड़की पर झुककर सिर टेक देता है। रामलाल ग्लास मेजपर रखकर उ ते हैं—मुनीश्वर के पास खड़े
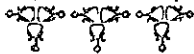
होते हैं। कुछ देर ध्यान न उसे देखते रहते हैं—फिर उसे उसी हालत में छोड़ कर दूसरे कमरे में चले जाते हैं। मुनीश्वर सिर उठाता है। कुछ देर तक फिर बाहर आकाश की ओर देखता रहता है दाया हाथ उठाकर मुट्ठी बाधता है और उसे इधर उधर शून्य में घुमाता है। कई बार झटका देता है फिर मुट्ठी बांधे हुये हाथ अपने सिर पर रख लेता है। उसी तरह सिर पर हाथ रक्खे आगे पीछे टहलता है। हाथ नीचे गिरता है। झुककर अपने कोट की जेब में कुछ देखता है। उसे चूमता है। फिर हाथ घुमाकर पिस्तौल का मुंह छाती से लगाता है। घोड़पर अगूठा लगाता है। मालूम पड़ता है अब अगूठा दबाता है अब दबाता है। लेकिन दबाता नहीं। थोड़ी देर तक पिस्तौल का मुंह ठीक छाती के सटा हुआ सामने और उसका अगूठा पिस्तौल के घोड़े पर पड़ा रहता है। उसके मुंह की आकृति गंभीर और भयकर हो उठती है। क्षण भर बाद जैसे उसके भीतर बिजली चमकती है। वह खिल उठता है। आवेश में जीवन की जय हो कह उठता है। हाथ में एक कागज लिये—अशगरी का प्रवेश। अशगरी उसकी छाती से सटी पिस्तौल देखकर भय के मारे कांपने लगती है। मुनीश्वर उसकी ओर देखता है। अशगरी अपने को सम्हाल नहीं सकती है कांपती हुई ज़मीन पर बैठ जाती है और झुककर मुनीश्वर के पैर पर अपना सिर रख देती है दोनों हाथों से उसका पैर पकड़ लेती है। सिसक सिसक कर रोने लगती है।]

मुनीश्वर—मालूम होता है, मै नरक में जरूर जाऊंगा। पूजा कर रहा था—ध्यान टूट गया। [झुककर अशगरी के सिर पर हाथ रखता है।] मैं तो तुम्हारे रोने से हैरान हो गया हूँ। क्या है? कैसा कागज?

अशगरी—तुम आत्महत्या करना चाहते हो?

मुनीश्वर—[गंभीर होकर] चाहता तो हूँ।

अशगरी—क्या?

मुनीश्वर—तबियत ऊब गयी है। दुनियाँ मे अब ऐसी कोई चीज नहीं देख पड़ता जिसके लिये मैं जाता रहूँ [अशगरी की ओर गंभीर होकर देखने लगता है—अशगरी भी उसकी ओर देखती है थोड़ी देर एक दूसरे की ओर देखते हैं। अशगरी हाथ का कागज़ फाड़ कर फेंक देती है।]

अशगरी—उंहान इसमें लिखा था कि तुम यहाँ न आया करो—लेकिन अब तुम्हारे बिना

मुनीश्वर—तब मै नहीं आऊँगा—लेकिन

अशगरी—कहो तो मैं उन्हें जहर

मुनीश्वर—[अशगरी के दोनो कंधो पर हाथ रखकर] जानती हो आदमी की जिन्दगी की कीमत कितनी ज्यादा है? उसमे भी उनकी जिन्दगी की—वे देवता हैं—मैं राक्षस हूँ। तुम अपने देवता की—[अशगरी चिन्ता में पड़ जाती है] मैं तुम्हे छोड़ नहीं सकता
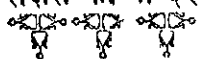
मजबूर हूँ। क्या कहूँ इस अभागे दिल का—नहीं तो तुम्हारा मुह नहीं देखता। तुम उन्ह जहर देने पिशाचिनी। लेकिन तुम्हारा भी दोष नहीं। सारा दोष मेरा है। मैंने ही तुम्हें पिशाचिनी बनाया इसलिये कि मैं पिशाच हम दोनों का साथ। [अशगरी नीचे ज़मीन की ओर देखती हुई पैर का अगूठा हिलाने लगती है। मुनीश्वर आगे बढ़कर उसके सिर पर हाथ फेरने लगता । उसका बाल सघता । अशगरी उसके गले से अपनी बाहें डाल देता है। मुनीश्वर उसका मुह उठा कर चुम्बन करता है] रानी जाओ सो रहो—बड़ी रात हो गई।

अशगरी—और तुम ?

मुनीश्वर—मैं रात को सोता नहीं राक्षस रात को नहीं सोते।

अशगरी—कब सोते हो ?

मुनीश्वर—कभी कभी दो चार दिन पर जब तबियत चाहती है—सबेरे, दोपहर को या शाम को सो जाता हूँ। रात को नहीं सोता। [रामलाल का प्रवेश। अशगरी जाना चाहती है।]

रामलाल—ठहरो—[अशगरी खड़ी होती है—खिड़की के बाहर देखने लगता है] तुम्हें मेरा खत मिला ? [मुनीश्वर की ओर देखते हैं।]

मुनीश्वर—आप रात को सोते हैं—या खत लिखते हैं ? मैं तो रात को खत नहीं लिखता हूँ और न पढ़ता हूँ—यह मेरा सिद्धान्त
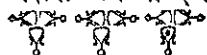
रामलाल—मैं पूछता हूँ मिला या नहीं सिद्धा त तुम्हारा जा है वह

मुनीश्वर—आप जानते हैं—तब तो कोई बात नहीं—लेकिन शायद अभी नहीं जानते।

रामलाल—तुम क्या थे और क्या हो गये?

मुनी वर—जैसे दुनिया बदलती गयी मैं भी बदलता गया। समझते हे ? जि दगी क लिये समझौता, यही तत्त्व है। जि दगी के साथ समझौता करना—कौन नहीं करता है—बुद्ध या ईसा, सुकरात या टालसटाय—जा नहीं करता वह मूर्ख

रामलाल—तुम अपन पाप की वकालत खूब करते हो?

मुनीश्वर—कौन नहीं करता?

रामलाल—सब नही करते। तुम सारी दुनिय को अपनी ही नजर से देखते हो।

मु ीश्वर—कौन नहीं अपनी नजर से देखता?

रामलाल—मुनीश्वर मझे क्षमा करो। मेरी चिट्ठी म्ह मिली या नहीं?

मुनीश्वर—मुझे दिखला कर फाडदी गई।

रामलाल—अशगरी! तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया?

मुनीश्वर—उसका क्या दोष है? आप को इतना अनुदार नहीं होना चाहिये। मनुष्य अपने हृदय को कहा तक कुचलेगा?

रामलाल– [कुछ सोच कर] मुनीश्वर—मैं क्या हूँ मैं भी नहीं जानता, लेकिन मैं अनुदार नहीं हूँ। मैं तुम दोनों को क्षमा करता हूँ। मैंन अपने हृदय को कितना कुचला है अगर तुम जानते। लेकिन तुम जान कर ही क्या करोगे ? तुम मेरे घाव पर नमक छिड़कते जाओ और मुझे हँसन दो। मैं रोऊँगा नहा।

[रामलाल का प्रस्थान]

मुनीश्वर—[अशगरी का हाथ पकड़कर] देखा तुमने ? दवता हैं की नहीं ?

अशगरी—आ तुमको यहा नहीं आना चाहिये—मैं अपन पाप का फल भोगूगी

मुनीश्वर—पागल !—पाप किसे कहत हैं ? पाप दुनिया इसी स है नहीं तो फिर यह स्वर्ग हो जाय। यह कभी स्वर्ग होगी नहीं मैं तो पाप को ही जि दगी में जो चीज सब रा सु दर है—उसी को पाप कहते हैं। दुनिया का वही समझ सकते हैं—जो पाप का समझ ? [हँसकर] पाप को सजा दो स्वर्ग और नरक कहीं नहीं रहेगा। स्वर्ग और नरक लड़को की खेल है।

अशगरी—आखिरकार कब तक इस तरह चलता रहेगा—दूसरे के घर में

मुनीश्वर—जब तक चले ? एक दिन, दो दिन एक घड़ी या एक वष—जब तक मुझमें शक्ति रहेगी—साहस रहेगा– जब

मैं अपनी जि दगी को अपनी मर्जी क मुताबिक जब तक मैं अपना राजा रहूँगा। तुम क्यों घबड़ाती हो ? [कुर्सी घुमा कर बेठते हुये] इधर सुनो । [अश्गरी उसके पास जाकर खडी होती हे मुनीश्वर उसका हाथ पकड़ कर खींचता है—अश्गरी उसकी ओर झुकती हे—कुरसी की बाज़ू के सहारे बेठ कर मुनीश्वर की छाती पर अपना सिर रख देता हे। मुनीश्वर एक हाथ स उसके गले के चारो ओर दूसरा उसकी पीठ पर फेरने लगता है। अश्गरी का गुदगुदी मालूम होती ह—उसका शरीर कापने लगता हे। वह कभी हसती है। कभी बड़बड़ाती है कभी उलाहना देती है। गोद में लड़का लिये और एक हाथ म ग्लास का जल लिये मुनीश्वर की स्त्री का प्रवेश। वह आगे बढ़ती है—एक क्षण के लिये हिचकती है—लेकिन दूसरे ही क्षण लड़के को ज़मीन पर उतार कर मुनीश्वर के आगे जमीन पर बैठकर उसका पेर उठाकर—उसके पैर का अगूठा ग्लास के पानी मे डुबोती हे अश्गरी आश्चर्य स स्तम्भित होकर उठती है—पीछे हटती ह उसके पैर का धक्का बच्चे को लग जाता हे—वह रो उठता है। मुनीश्वर की स्त्री उसकी ओर कातर दृष्टि से देखती है—अश्गरी बच्चे को रोता हुआ छोड़ कर एक ओर खड़ी होती है। मुनीश्वर की स्त्री मुँह फेर कर मुनीश्वर का चरणोदक पीने लगती है—लड़का रोता रहता है। मुनीश्वर लड़के की ओर देखता है—लड़का रोते हुये धीरे धीरे आगे बढ़कर मुनीश्वर का पैर पकड़ कर खड़ा होता है। मुनीश्वर गनगना
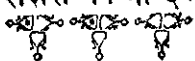
उठता है उसके चेहरे पर विषाद का कालापन आजाता है। जैसे बड़ी पीड़ा में हो। वह अपने को सम्हालता है—लड़के को उठाकर कंधे पर बिठा लेता है। उसकी स्त्री उसके घुटने पर अपना सिर रख देती है और अपना हाथ घुमा कर उसकी जांघ पर—इस तरह उसका मुँह कुछ तो मुनीश्वर के घुटने के भीतर और कुछ उसकी बांहों में छिप जाता है। अश्गरी बड़े उद्वेग और आश्चर्य से यह सब देखती है। मुनीश्वर अश्गरी की ओर देखता है—उसकी आंखों में दुःख का चिह्न साफ देख पड़ता है। अश्गरी मुनीश्वर की ओर देखती हुई अपने ओठ पर उंगली रखती है। मुनीश्वर उसे वहां से हट जाने का संकेत करता है। अश्गरी गर्दन टेढ़ी कर उस पर कटाक्ष करती है—हाथ इस तरह हिलाती है जिससे पता चलता है कि वह वहां से जाना नहीं चाहती। मुनीश्वर हाथ जोड़ कर उसे वहां से चले जाने का संकेत करता है। अश्गरी हाथ जोड़ कर न जाने का संकेत करती है। मुनीश्वर सिर झुका कर अपने सिर पर हाथ रखता है। अश्गरी भी उसी तरह सिर झुका कर अपने सिर पर हाथ रखती है। मुनीश्वर की स्त्री उसी तरह निश्चेष्ट मुनीश्वर के घुटनों के बीच में सिर रक्खे चुपचाप बैठी रहती है। सांस भी लेती है या नहीं—पता नहीं चलता है। लड़का मुनीश्वर के कंधे पर कूदने लगता है दोनों हाथ से ताली बजाता है—कभी मुनीश्वर का बाल मुँह में पकड़ता है तो कभी कान—]

मुनीश्वर—ओफ! बड़ी गर्मी [अश्गरी की ओर देखते हुये लड़के की पीठ पर हाथ रख कर] जरा इसे बाहर बगीचे मे—[अश्गरी मुस्कराती हुई उसके नज़दीक आती है—लड़के को गोद में लेती है—तेज़ी से झुक कर अपने ओठ से मुनीश्वर का ओठ छू लेती है। मुनीश्वर का शरीर हिल उठता है। अश्गरी का प्रस्थान।]—दुर्गा—[मुनीश्वर अपनी स्त्री के सिर पर हाथ रख कर उसका सिर हिलाता है] दुर्गावती! ऐसा बैठा यह ठीक नहीं। [दुर्गावती उसी तरह निश्चेष्ट पड़ी रहती है। वह उसी तरह बैठी हुई मूर्छित हो गई है—मुनीश्वर को यह पता नहीं चलता वह खड़ा होता है—हटता है दुर्गावती का सिर ठक से कुर्सी पर गिरता है फिर भी किसी तरह का गति सचार उसके शरीर पर नहीं होता। मुनीश्वर झुक कर उसका सिर कुर्सी से उठाकर उसके मुख की ओर देखता है। दुर्गावती के ओठों की ललाई पर कुछ कालापन आगया है—उसके गालों का रंग फीका पड़ गया है। आंखें बंद हैं। बरौनी तनी हुई हैं। उसके मस्तक पर पसीने की बूंदें आ गई हैं। मुनीश्वर एक बार सिहर उठता है। उसे गोद में लेकर ज़मीन पर बैठ जाता है। अपनी धोती से उसके मुँह का पसीना कई बार पोंछता है—और बार बार हवा करता है। दुर्गावती बेहोशी में कई बार इधर उधर बांहें फेरती है फिर शांत हो जाती है। मुनीश्वर उसके मुँह मे उंगली डाल कर उसका दांत खोलना चाहता है—लेकिन खोल नहीं पाता—एक बार बड़ी कोशिश

करता है किसी तरह उँगली दुर्गावती के दाँतो के भीतर चली जाती है लेकिन फिर उसके दाँत इतने ज़ोर से बन्द होते है कि मुनीश्वर की उँगली उसके ओठो के भीतर दब जाती है और उसमे उसके दाँत गड़ जाते हैं। मुनीश्वर के लड़के को गोद मे लेकर अशगरी का प्रवेश। अशगरी की ओर देखकर] इसके दाँत लग गये हैं। मेरी उँगली दब गई किसी तरह छुड़ाओ नही तो—ओफ मालूम होता है अब उँगली के दो टुकड़े हुये।

अशगरी—कट जाने दो यह सुख तुम्हें जिन्दगी भर नहीं भूलेगा।

मुनीश्वर—दिल्लगी न करो—उफ

[अशगरी लड़के को ज़मीन पर बैठा कर दुर्गावती के दाँत खोलकर मुनीश्वर की उँगली निकालना चाहती है। लड़का चलता है दुर्गावती की गोद में सिर इधर उधर घुमाने और हाथ पेर पटकने लगता है] हाय रे जिन्दगी ?

[दुर्गावती का दाँत खुल जाता है—मुनीश्वर उँगली खींचता है—दुर्गावती एक बार मुनीश्वर की ओर देखती है क्षण भर उसकी नज़र जैसे टिक जाती है किन्तु वह दूसरे ही क्षण अपने को सम्हालता है—लड़के को गोद में लेकर नीचे ज़मीन की ओर नजर कर लेती है—अशगरी का प्रस्थान] दुर्गा—इधर देखो—

[दुर्गावती उत्तर नहा देती और न उसका ओर देखती है] अब मैं तुम्हारे किसी काम का नहीं रहा मुझस मान करना सोच लो फ़जूल है।

दुर्गावती—मैं यह जानती हूँ—लेकिन आप मेरे काम के क्यों नहीं रहे ? आपन मेरा हाथ नहा पकड़ा उस दिन उस रात का उस मण्डप म वेद म त्रा के बीच

मुनीश्वर—[हँसते हुये] पगली [लड़के की ओर एक टक देखकर] स्त्री और पुरुष के भीतर जो प्रकृति है उसकी ओर न देख कर मण्डप, वेद—मन्त्र, क यादान की माया मे अब तक इतन दिन तक पड़ी रह गयी। इसी लिये तुम्ह स्रैर तुम्हें कुलीन और प्रतिष्ठित घरान की बहू का इस तरह घर के बाहर पैर निकाल कर दूसरे के यहा

दुर्गावती—आप जहाँ रह—मुझे जाना

मुनीश्वर—नहीं तुमन कुलीनता की मर्यादा तोड़ी है—तुमसे मुझ ऐसी आशा नही थी।

दुर्गावती—आज मालूम हुआ—आप मरे नहीं जी रहे हैं—दो वर्ष के बाद यहाँ

मुनीश्वर—देखो—दुर्गा अपन पत्नीत्व को भूल जाओ—मातृत्व का ख़याल करो। ईश्वर ने तुम्हे पुत्र दिया है—तुम्ह जीने के साधन की कमी नहीं है। मैंन तुम्हे छोड दिया तो छोड
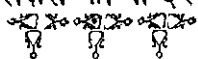
दिया। तुम देवी हो—मैं राक्षस हूँ। तुम अपना धर्म जानती हो उसके अनुसार चलती हो। मैं पता नहीं किस लहर में बहा जा रहा हूँ। जो जी चाहता है कर बैठता हूँ—धर्म, अधर्म—स्वर्ग—नरक की परवाह नहीं करता

दुर्गावती—आप मेरे देवता हैं। या आप की इच्छा। धर्म और अधर्म में आप पड़े या न पड़—लेकिन अपने हृदय के अज्ञात देव मे तो आपको विश्वास है—जिसकी आज्ञा से आप मेरा विश्वास भी उसपर रहने दीजिये लेकिन मैं आप से तर्क नहीं करूगीं। आप मुझे आज्ञा दीजिये मैं क्या करूँ? कैसे रहूँ? कभी कभी जब जी चाहे दासी का चरणोदक

मुनीश्वर— दुर्गा तुम अपनी इस आखिरी चालसे मुझे मात करना चाहती हो। यह चाल लौटा लो और अगर नहीं तो मैं फर्जी लड़ूगा—तुम्हे यह चाल चलनी नही चाहिये थी मेरे लिये कोई जगह नहीं बची।

[दुर्गा चुप रहती है—प्यासी आखों से बच्चे की ओर देखती रहती है] तो तुम अपनी चाल लौटाओगी या नहीं? अच्छी बात है—मै फर्जी लड़ता हूँ—खेल बिगड़ जाने दो। तुम मेरी दासी नहीं हो और न रानी। याद है कि नहीं—मैं ने कहा था—मेरे साथ चलो तुमने मेरा विरोध किया। तुमने कहा था परिवारिक सम्बन्ध बिगड़ जायेगा। तब अब क्यों मुझे छोड़ दो भूल

जाओ तुम को अब माता का पद मिला है उसके साथ समझौता करो मुझे तुमने स्वतन्त्र कर दिया स्वयं भी स्वतन्त्र बन जाओ।

दुर्गावती—लेकिन मेरा पत्नी का पद

मुनीश्वर—सब कुछ साथ नहीं हो सकता। और फिर यह तो तुम पर है उस पत्नी के पद को मार डालो या जीता रखो। तुम मुझसे माँग कर तुम्हारे पास जो है उसे भी छोड़ रही हो। जो स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं उनका पत्नीपद जीता रहता है या मर जाता है?

दुर्गावती—हाय कितने निष्ठुर—इस बच्चे की ओर देखो—

[मुनीश्वर दुर्गा की गोद से बच्चे को लेकर उछालने लगता है—बच्चा और जोर से हँसता है] अभागे अगर तुम जानते

मुनीश्वर—[मुस्कराकर] इस जानने में जल्दी मत करो अभी बहुत कुछ तुम्हीं नहीं जानती हो जिस दिन जान जाओगी उस दिन

दुर्गावती—[मुनीश्वर का हाथ पकड़ कर] तो अब कब? प्रियतम ! [दुर्गावती की आँखों से आँसू टपक पड़ते हैं।]

मुनीश्वर— देखती चलो शायद किसी दिन [झुककर ओठ चूम लेता है]

दुर्गावती—बस मुझे अब कुछ नहीं चाहिये मेरा पत्नीपद जीता रहेगा।

मुनीश्वर—[कुछ सोचते हुए गम्भीर होकर] तो तुम जीत गई और मै हार गया इतनी तैयारी पर

[दुर्गावती मुस्कराती है—मुनीश्वर का हाथ उठाकर अपने हृदय पर रखती है] स्त्री और पुत्र दुर्गा तुम सचमुच जीत गई

दुर्गावती—मै तुमसे अलग नही हूँ मेरा जो कुछ है तुम्हारा है। बाहर माता जी खड़ी हैं—

मुनीश्वर—मा, यहा क्यो नहीं ?

दुर्गावती—यहा वे नहीं आयगी यहा आना उनके सम्मान के विरुद्ध [दुर्गावती जाना चाहती है]

मुनीश्वर—[लड़के को आगे बढ़ाते हुए] इस लिये जाओ—

दुर्गावती—क्या भारी मालूम हो रहा है—अब दो वर्ष तुम [दुर्गावती का प्रस्थान]

मुनीश्वर भी जाने के लिये आगे बढ़ता है रामलाल का भीतरी दरवाज़े से प्रवेश]

रामलाल—मुनीश्वर जरा ठहरो। तुम्हारे पैरो मे बेड़ी किसने पहनाई स्त्री ने या बच्चे ने ?

मुनीश्वर—दोनो ने

रामलाल—तुम इसे अपना पतन मान रहे हो या नहीं ?

मुनीश्वर—जनाब इसे जिन्दगी की जीत कहते हैं।

रामलाल—मुनीश्वर। तुमने शपथ लिया था। उसका दण्ड [पिस्तोल निकालता है]

मुनीश्वर—[मुस्करा कर] ठहरिये कहीं आपका निशाना चूक कर इस लड़के को न अब तो आप मेरी कोई बात नहीं सुनेंगे न?—

रामलाल—कहो जब तक तुम्हारे शरीर मे प्राण है

मुनीश्वर—वकील साहब—सब कोई आपही की तरह नहीं हो सकता। कौन कह सकता है कि आप हत्यारे हैं ? आप की जिन्दगी देखकर। आपने जिन्दगी को जीत लिया है और मुझे जिन्दगी ने जीत लिया है। इन दोनो मे अन्तर है। मेरे लिये तो—

> जानामि धर्मम् नच मे प्रवृत्ति
> जानाम्यधर्मम् नच मे निवृत्ति,
> केनापिदेवेन हृदस्थितेन—
> यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।

आप मुझे मार सकते है—लेकिन मेरे हृदय के उस अज्ञात देव को नहीं।

रामलाल—[हँसकर] हा—हा—तुम्हे इतने पर भी अपने हृदय के अज्ञातदेव मे विश्वास है? अच्छी बात है मैं तुम्हें
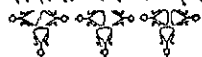
तुम्हारे हृदय के उसी अज्ञातदेव की मर्जी पर छोड़ रहा हूँ। अभी तुम्हारे लिये आशा है। लेकिन मेरे लिये । मुनीश्वर तुम जाओ। हम दोनों में किसी एक का मरना चाहिये। मृत्यु से तुम्हारा कोई उपकार नहीं होगा लेकिन मेरा होगा। अब मुझे दूसरी जिंदगी की जरूरत है मैंने इस जिंदगी का स्वाद खब लिया। बात क्या नहीं ?

मुनीश्वर—तो क्या आप आत्म हत्या करेंगे ?

रामलाल—[कुछ सोचकर] आत्म हत्या एक भांति की सब से भयंकर मुनीश्वर मैं हत्या करूंगा शरीर का नहीं — आत्मा की। शरीर यही रहे लेकिन आत्मा यह न रहे। अब यह अपना बोझ सम्हाल नहीं सकती। यह रहने लायक नहीं है। पक गई है, डार से चू जाने दो। मैं आत्म हत्या करूंगा—जो कुछ पुराना था सब का नाश पुराने हृदय का पुरानी आत्मा का पुरानी दुनिया का जो कुछ था सब का उसकी जगह पर सब कुछ नया होगा।

मुनीश्वर—[मुस्कराकर] जैसे मैं अपना सब कुछ नया कर रहा हूँ वैसे ही

रामलाल—नहीं वैसे नहीं—मैं आगे बढ़ूंगा और तुम कोसों पीछे हटे हो। तुम हटते ही जाओगे आगे नहीं बढ़ोगे तुम्हें जहाँ पहुँचना था वहाँ नहीं पहुँचोगे।

मुनीश्वर—[मुस्कराकर] एवमस्तु आप आगे को बढ़िये, मैं पीछे को—दुनिया गोल है—किसी न किसी दिन मिल जायगे।

रामलाल—मिल जाँयगे ?

मुनीश्वर—अरे—नहा नहीं भिड़ जायँग [हाथ आगे बढ़ा कर] आगे और तब घूम कर पीछे। लेकिन एक बात तो है—इस समय तो आप मुझसे आगे जा रहे हैं, लेकिन उस समय जरूर पीछे होंग।

रामलाल—खैर जो होगा देखा जायगा—इस समय तो तुम कृपा कर जाओ। [मुनीश्वर का सन्देह और विस्मय से प्रस्थान] अशगरी! अशगरी! [नेपथ्य में क्या है?] इधर सुनो। [अशगरी का सिर नीचे किये प्रवेश। रामलाल उसको ओर ध्यान से देखते हैं। अशगरी उसी तरह सिर नीचे किये चुपचाप खड़ी हो जाती है] अशगरी! [अशगरी सकपकाकर उनकी ओर देखती है] शराब की जितनी बोतलें हों ले आओ। [अशगरी का सिर नीचे किये प्रस्थान। रामलाल का उठकर खिड़की से बाहर की ओर देखना—खिड़की के बाहर किसी की आहट] कौन है—रघुनाथ ?—नहीं सुनते ? [रामलाल का खिड़की के बाहर कूद पड़ना। अशगरी का टोकरी में शराब की कई बोतलें लेकर प्रवेश—मेज पर टोकरी रख देती है बाहर के दरवाजे से रघुनाथ की बाँह पकड़े रामलाल का प्रवेश।]

रामलाल—मेरे बच्चे ! अतीत की बातों को अतीत के गर्भ में विलीन हो जाने दो मैं अपना सब कुछ बदल देना चाहता हूँ—अपनी जिन्दगी अपनी आत्मा, अपना हृदय, अपनी दुनियाँ—जो बीत गया भूल जाओ।

रघुनाथ—यह नहीं हो सकता—या तो मैं रहूँगा या [अश्गरी की ओर संकेत कर] यह रहेगी। दोनो नहीं रह सकते ? [रामलाल मेज़ पर से बोतलें उठा उठा कर बाहर फेंकने लगते हैं अश्गरी और रघुनाथ विस्मय से देखते रहते हैं]

अश्गरी—हाँ, हाँ, क्यों फेंक रहे हैं—किसी को दे डालिये, पी डालेगा।

रामलाल—जो चीज मेरे लिये बुरी है दूसरे के लिये अच्छी होगी ? अपनी बुराई दूसरे के सिर अश्गरी शीशा, कंघी, साबुन, सिगरेट जो कुछ हो—जिसके बिना जिन्दगी चल सके सब उठा लाओ। मेरे घर में फजूल की चीजें ! सब फेंक दूँगा।

रघुनाथ—क्यों सब फेंक रहे हैं ? आपको जरूरत नहीं है—औरों को होगी।

रामलाल—मैं अपने घर को अपनी जरूरत के मुताबिक बनाना चाहता हूँ। औरों की फिक्र दूसरों की चिन्ता में ही मैंने अपना सब कुछ बिगाड़ा अब अपनी चिन्ता करूँगा। अश्गरी जाओ सब लाओ। [अश्गरी का प्रस्थान]

रघुनाथ—लेकिन यह रहेगा तो मैं नहीं रहूँगा।

रामलाल—[रघुनाथ को ओर देखते हुये] उसने मेरे लिये अपनी दुनियाँ बिगाड़ी है। इस समय शहर को बाजार में उसका नाम होता। अब वह कहाँ जायेगी, क्या करेगी? लेकिन मैं एक काम कर सकता हूँ—वह भी मुझसे अलग रहे—तुम भी मुझसे अलग रहो—तुम दोनों की जरूरतें मैं पूरा कर दिया करूँगा। समझे? मैं अकेला यहाँ रहना चाहता हूँ—कोई मेरे साथ न रहे। कुछ दिन ईश्वर की प्रार्थना करूँ—शायद।—लेकिन तुम उसके साथ क्यों नहीं रह सकते? वह भी आदमी है। आदमी तो ऐसे होते हैं—जो शेर के साथ रहते हैं। तुम आदमी के साथ नहीं रह सकते? [रघुनाथ कुछ सोचने लगता है] मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी चिन्ता खुद करे। अपना बनाना बिगाड़ना अपने हाथ है। दूसरे किसी को दोष देना फजूल।

रघुनाथ—लेकिन जिसमें इतनी ताकत न हो—

रामलाल—न क्या हो—करना पड़ेगा। तभी जिन्दगी ठीक रास्ते पर रहेगी। अपना पैर मजबूती के साथ जमीन पर रखना चाहिये। आँधी आती है तो आये—समझे? कम से कम अपने को समझ लो। तुम क्या चाहते हो?—इसका पता तुम्हें होना चाहिए। और अगर यही नहीं जानते कि तुम क्या चाहते हो तो यह सब [रघुनाथ की ओर ध्यान से देखने लगते
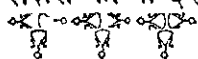
हैं—रघुनाथ का गस्थान। रामलाल गम्भीर चिंता म पड जाते हैं—ह थेनी पर सिर रख लते ह अशगरी का प्रवेश।]

अशगरी—बड़े शीशे तो भारी है—उठते नहीं।

रामलाल—[उसकी ओर विरक्ति भरी सहानुभूति से दखते हुए] रहन दो। अपन साथ ल जाना। कब जाओगी ?

अशगरा—[सिर झुकाकर] कहाँ ?

रामलाल—आह—अभी तुम नहा जानती। मैं अब अकेले रहूँगा-किसी का भी अपने साथ नहीं। तुम्हारी जहाँ तबीयत चाहे जा सकती हो। लकिन एक बात है—अगर तुम किसी जगह अपन दिल को काबू म कर रहना चाहो तो मै तुम्हारा सारा इंतजाम कर सकता हूं। तुमन भी दुनियाँ की मुहब्बत बहुत दखी अब खुदा की मुहब्बत की ओर देखो तो अच्छा—[अशगरी उनकी ओर देखती है—उसकी आखों में आँसू छलछला पडते हैं—वह मुंह फेर कर आंचल से आँखें पोछती है—रामलाल उसकी ओर देखते हैं—उनकी नज़र जैसे उसके दिल में घुस कर कुछ पता लगाना चाहती है। अशगरी घूम कर उनकी ओर निस्संकोच दृष्टि स देखने लगती है।]

अशगरी—मुझसे क्या हो सकेगा क्या नहीं यह तो मैं नहीं जानती। इसलिये इसके बारे मे कुछ नहीं कहूँगी। मै आपकी इज्जत नहीं बिगाड़ती—इसलिये मुझे जहाँ जगह मिल आपकी
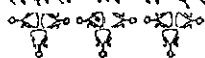
ओर से मै वहीं रहूँगी। मुझे बहुत सामान भी नहीं चाहिए। मेरी इज्जत बची रहे और क्या ? मैंने आप के साथ ईमानदारी नहीं किया—लेकिन तब भी आपकी माफी की उम्मीद करती हूँ। कहिये आप मुझे इस आखिरी बार माफ कर देंगे ? आखिरी बार इसका ख्याल रहे। [रामलाल उठते हैं—अशगरी के नज़दीक जाते हैं। दाहिने हाथ से उसका दाया हाथ पकड़ते हैं और बाया उसकी पीठ पर रख कर—उसे छाती से लगाना चाहते हैं—अशगरी झटका देकर अपनी बाँह छुड़ा लेती है—कई कदम पीछे हटती है] बस अब नहीं—जो करना है अभी से शुरू हो जाय। मन की बाग डोर अगर कड़ी करना है तो अभी से एक बार भी ढीली करने पर तो यह कुछ दूर सरपट दौड़ता रहेगा। मुझे कहीं ऐसी जगह भेज दो जहाँ न कोई मुझे जाने और न मैं किसी को जानूँ।

रामलाल—तुम्हारा तबियत लगेगा ?

अशगरी—हुजूर—अब तबियत लगने का सवाल नहीं है सवाल है तबियत लगाने का। आपके साथ रहने से कम से कम इस लायक हो चुकी हूँ कि खुद अपने कलेजे को चीर कर—उसका काँटा निकाल सकती हूँ। अब मैं कुछ नहीं चाहती। [रामलाल अशगरी का हाथ पकड़ना चाहते हैं] तुम्हें रघुनाथ की कसम—दुनिया में जो कोई भी तुम्हारा सगा हो—उसकी कसम कि तुम मुझे उस नियत से छूना ! तुम्हें आज क्या हो गया। अब तुम

शराब में डूबे रहते थे तब तो तुमने मुझे कभी इस नजर से देखा नहीं और आज जब तुम सब कुछ छोड़कर फकीर बन कर इबादत करने की तैय्यारी कर रहे हो तब तुम्हारी यह हालत ? छी तुम्हें क्या हो गया ?

रामलाल—मैं अभी फ़कीर नहीं बन सकता अशगरी !

अशगरी—खैर जैसी मर्जी—लेकिन अब मुझसे कुछ उम्मीद रखना—बालू से तेल निकालना होगा।

रामलाल—मैं निकाल लूँगा बालू से तेल

अशगरी—अच्छी बात—देखा जायगा

[रामलाल का उसकी ओर सहानुभूति से देखते हुए प्रस्थान]

[अशगरी का कुर्सीपर बैठना। हथेली पर दोनों आँखें छिपा कर सिर टेक देना। रघुनाथ का प्रवेश। रघुनाथ का दरवाज़े के भीतर एक पैर और एक पैर बाहर कर उसे देखना पीछे हट कर लौटना लेकिन फिर क्षण भर बाद कमरे में आना। अशगरी के पास जाकर खड़ा होना। उसे देखना। अशगरी का सिर उठाकर—रघुनाथ की ओर देखना। चार आँखें—रघुनाथ का झेंप जाना।]

अशगरी—मुझे यहाँ से चले जाने का हुक्म मिल गया। अब आप को मेरी वजह से तकलीफ नहीं होगी। मेरी वजह से आपको तकलीफ हुई ही क्यों ? समझ में नहीं आता।

रघुनाथ—मुझे कोई तक़लीफ नहीं होती ? यह तो काम है।

अशगरी—अपनी किताब का एक जिल्द आप मुझे दे सकेंगे। रास्ते के लिए?

रघुनाथ—कहाँ जाना होगा?

अशगरी—यह नहीं जानती। कहीं जाना होगा—इतना जानती हूँ—मैंने आपका घर बिगाड़ा था। ख़ैर एक जिल्द दी दीजियेगा न। [रघुनाथ आल्मारी खोल कर किताब निकालता है। उसके सामने मेज़पर रख देता है। अशगरी किताब उठाती है—इधर उधर पन्ने करती है—एक जगह ठहर जाती है—गुनगुनाने लगती है—फिर गाने के स्वर में ऊँची आवाज़ में—

किंतु आह! तुम बैठ विजन मे,

खोल हृदय पर कुंचित केश—

बीती गई मान की घड़िया,

प्रिय तुम सोचोगी किस देश?

[रघुनाथ की ओर देखने लगती है—रघुनाथ सहम उठता है।]

साथ ले जाऊगी—जब आधी रात होगी—तारों को छोड़ कर जब और कोई जागता न रहेगा तब गाया करूंगी। माफ़ करना।

पर्दा गिरता है।

दूसरा अंक

[नदी का किनारा। स ध्या। सर। डूब रहा है—नदी के उस पार के आकाशमें जैसे आग लगा है—सारा आकाश लाल रक्त वर्ण। चिडियों की बोली नदी में पतवारो का कभी कभी छप छप कभी कभी मनुष्य की भी अस्पष्ट आवाज़। तीन लडकियो के साथ अशगरी का प्रवेश। दो लडकिया ऊचे और धनी घराने की मालूम पड़ती हैं। एक की अवस्था प्राय सालह वष का और दूसरी का बारह वप की। बडी लडकी के देखने से मालूम होता है कि वह काफ़ी पढी लिखी है और नई रोशनी की तड़क भड़क पस करती है। उसका चाल ढाल—कपडा की सादगी लेकिन साथ ही साथ सजावट—सिर खुला हुआ— अचल का बाये कधे पर सुनहली क्लिप के नीचे चुना सोना और पीछे की ओर लटकना बेणी का रेशमी फीते से और अ त में कमर के पास रेशमी रुमाल से बधी हाना कामदार जूता। तीसरी लडकी भी करीब उसी की अवस्था की लेकिन कपडे और शरीर से छोटी जाति की मालूम हो रही है। उसकी दासी है। उसके हाथ म लोटा और कधे पर साफ कपडे पडे हैं। सब नदी के किनारे पर पहुच कर ठहरती हैं—कगारे पर हरी घास जमी है।]

बडी लडकी—ज़रा यहा सुस्ता लें। आप भी तो चलती हैं तो मीलों—मैं तो थक जाती [अशगरी उसकी ओर देखती है—उसकी

भौहें कुछ उपर को खिंच जाती हैं—नाक सिकोड़ कर इधर उधर सिर हिलाती हुई बड़ी लड़की इस तरह बैठती है जैसे बहुत कष्ट में हो उसके बाद सभी बैठती हैं। दासी दूर पर बैठती है।]

अश्गरी—इतनी दूर क्यों बैठती हो यहा आओ [अपने बगल में हाथ रखती है।]

बड़ी लड़की—यहा हम लोगों के पास ? सुखिया एक लोटा पानी—[दासी का न ी की ओर प्रस्थान]

अश्गरी—हा–तो क्या हर्ज है ?— ललिता ! [उसके क धे पर हाथ रख कर] मनुष्य सब जगह एक ही है।

ललिता—हो सकता है—लेकिन सभी जगह बराबर नहीं हैं। दुनिया में सब की अपनी अपनी जगह है। सुखिया अपनी जगह पर है और मैं अपनी .

छोटी लड़की—बहिन नाज

अश्गरी—हो सकता शायद तुम्हारा कहना ठीक है। लेकिन ललिता—दुनिया म इतना दु ख और पाप इसी लिए है कि यहा छोटा बड़ा धनी गरीब अपना पराया इसी लिए

ललिता—[मुस्करा कर] इस वक्त आप स्वर्ग म हैं दुनिया में आइए।

अश्गरी—हँसो मत विचार कर देखो

[सुखिया का लोटा में पानी लेकर प्रवेश]
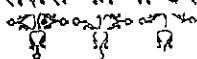
ललिता—[जूते के बाहर पैर निकालती है—जूते के रंग से उसकी एड़ी तथा उँगलियाँ लाल हो रही हैं] धोकर रंग साफ कर दे। पैर गरम हो गया। [हाथ से तलवा पकड़ती है। सुखिया उसका पैर धोता है। अश्गरी अखबार रख कर नदी के उस पार देखने लगती है]

अश्गरी—उस पार सूरज डूब रहा है—बस अब क्षण भर और। यही जिन्दगी है लोग कहते हैं

ललिता—लेकिन कल फिर सूरज निकलेगा—यह अन्त नहीं है—यही जिन्दगी है [सुखिया से] मुन्नी को ले जाओ—किनारे घुमाओ। [सुखिया का छोटी लड़की को साथ लेकर प्रस्थान—आप से मैं कई बार पूछ चुकी

अश्गरी—क्या ?

ललिता—आज बता दीजिए—आपका घर परिवार

अश्गरी—[मुस्कराकर] न मेरा कहीं घर है न मेरा कहीं परिवार है—मैं अकेली हूँ।

ललिता—कोई नहीं है ?

अश्गरी—कोई होता तो क्यों ? शायद इस जिन्दगी में तुम्हारे यहाँ—इस नदी के किनारे नहीं पहुँच पाती।

ललिता—जो भाग्य में हो

अश्गरी—भाग्य तो—लेकिन कुछ लोग भाग्य बदल दिया करते हैं।

ललिता—मैंने तो नहीं सुना

अशगरी—मैंने देखा है। एक जगह नहीं, तीन तीन जगह सुनागी ?

ललिता—कहिए—आपकी कौन सी बात सुनने लायक नहीं होती ?

अशगरी—इस से बढ कर सुनने लायक बात—और – तीन ने और लाना तीन जगह के [फिर गम्भीर होकर कुछ सोचने लगती है] जो नहीं होना चाहिए था हो गया—तीनों का साथ हो गया। [कुछ देर चुप रह कर] फिर तो तमाशा शुरू हुआ। लेकिन दुनिया ने बहुत कम देखा—अगर पूरा देख लेती तो— [ललिता की ओर देखती है]

ललिता—आप क्या कह रही हैं ?

अशगरी—हाँ सुना। दुनिया ने बहुत कम देखा- वे तमाशा करते गए। वे धोखे में थे कि जो कुछ हो रहा है—सच हो रहा है कभी कभी सच में होता भी था लेकिन बहुत कम या सच और झूठ वहाँ दोनों बराबर था—[ललिता उसकी ओर विस्मय से देखती है] उनमें जो प्रधान था जिसने तमाशा शुरू किया था—कभी कभी कहता था यह तमाशा है—लेकिन बहुत जल्दी भूल जाता था।

ललिता—रहने दीजिए—तबियत नहीं लगती—मालूम हो रहा है आप सोच कुछ नहीं हैं और कह कुछ रही हैं। वे तीन कौन थे ? क्या थे ? इसका तो पता नहीं।
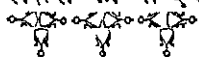
अशगरी—[जैसे ठोकर खाकर लड़खड़ाता हुई] वे तीन ? आदमा थ—आदमी। एक वेश्या थी। —दूसरे थे एक वकील साहब ना उसे अपनी बनाकर ल गए थ। वे नामी वकील थ। पचास क ऊपर थे। रुपये का लालच देकर ले गए। उस समय वह लड़की थी— उस कुछ पता नहीं था कि दुनिया मे क्या होता है। प्रम क्या है ? मुहब्बत क्या है उस समय या तो उस—अच्छे अच्छे खाने कपड़ और ऐश आराम की जरूरत थी। दिल एसा बला अभी उसके पास नहीं थी। वह चली गई। दा वर्ष बीत बड़े आराम और चैन स। सात बजे शाम को साती थी और उठता था सात बजे सबेरे

ललिता—[मुस्कराकर] तब तो जरूर लड़की थी। इतना सोना ? लकिन वे जो ले गये थे उसे इस तरह सोने देते थे ? तब ले क्या गए ?

अशगरा—हाँ—उस कभी छेड़त नहीं थे। ल क्या गए थे यह भा कहा नही जा सकता। दुनिया क और आदमी जिस लिए वेश्या रखत हैं—उस लिए उन्होंने नही रक्खा था। शाम को कचहरा स आते थे—बोतल और ग्लास लेकर वह उनके सामन खड़ी हाती थी। वह जब तक पीत रहते थ उसकी ओर दखा करत थे—बस यही इतना इसका जो मतलब समझा जाय।

ललिता—वे उसे प्रेम करते थे ?

अशगरी—इस तरह का प्रेम भी होता है कि कभी हाथ तक न पकड़ा जाय। खैर! दो वर्ष तो बीत गये—लेकिन जब तीसरा चढ़ा—उसकी जिन्दगी में एक नई बात आ गई। वह रात को इधर उधर करवटें बदलती, घटों आसमान की ओर तारों की ओर चाँद की ओर देखती रहती—ज्यों ज्यों दिन बीतते गये मर्ज बढ़ता गया। दवा करने वाला कोई था नहीं। [चुप हो जाती है]

ललित—हाँ कहिये-अब असल बात आई है। तब क्या हुआ ? कोई दवा करने वाला मिला कि नहीं ?

अशगरी— फिर वह जिस किसी भी झोली वाले को देखती उसके लिये जरूरत से ज्यादा दाम दे देती। किसको पड़ी थी कि उसकी बीमारी की जाँच कर दवा देता। दुनियाँ ऐसी है भी नहीं। जिसके मन में जो आया उसने उसे दे दिया फायदा कुछ नहीं। सब झोली वालों की झोली में दवायें नहीं रहतीं। जो रखते हैं वह भी अच्छी दवा लेकर बाहर नहीं निकलते।

ललिता—जिनके यहाँ वह रहती थी रोकते नहीं थे।

अशगरी—पहले तो उन्हें पता नहीं चला। चलता भी कैसे ? दिन भर अदालत में, घर सूना। कोई भी आ जा सकता था।

रात को—शाम होते ही खूब पी लेते थे, जागना और सोना बराबर।

ललिता—[सहानुभूति के स्वर में] तब तो उसे बड़ी तकलीफ हुई होगी ?

असग री—नरक से बढ़ कर। ओफ—वह तकलीफ [आवेश मे उसका स्वर काँपने लगता है]

ललिता—[विस्मय से] हाँ, हाँ क्या हो गया ? आप घबड़ा क्यो जाती हैं ? रहने दीजिये दूसरे दिन

असगरी—नहीं रोज रोज आज ही दिल हलका हो जाय। [ललिता स्नेह और उद्वेग के साथ उसकी ओर देखती है—असगरी इस ओर जरा भी ध्यान न देकर कहती जा रही है] उसे बड़ी तकलीफ हुई। मारे प्यास के बेचैन होकर उसने गले में तेजाब उड़ेल लिया। [असगरी की आखों से आसू बह चलते हैं—सिसक सिसक कर रोने लगती है]

ललिता—हाय, हाय आपका दिल इतना कमजोर है कि दूसरे के दुःख को याद कर आप इस तरह—[उसके आसू पोछती है—अपनी रूमाल से उसकी दोनों आँख बन्द कर देती है। असगरी कुछ देर तक सिसकती रहती है। उसका शरीर हिलता रहता है। ललिता उसकी ओर दुःख और सहानुभूति के साथ देखती रहती

हैं। अश्गरी अपने को सम्भाल कर खड़ी होती है। ललिता उसके मुँह की ओर   ।

अश्गरी—ललिता मेरी कमजोरी पर हँसना मत। दुनियाँ मे हँसने वाले भी हैं और रोने वाले भी। दूसरे के दुःख में हँस लेने के बनिस्बत रो लेना अच्छा है। आँसू के रास्ते हृदय का विकार निकल जाता है। प्रायश्चित्त करने का सब से सीधा तरीका है।

ललिता—लेकिन आप को प्रायश्चित्त करने की जरूरत?

अश्गरी—क्यों? मेरी जिन्दगी आदमी की जिन्दगी नहीं है? प्रायश्चित्त किसने नहीं किया? प्रायश्चित्त करने के लिये ही आदमी का जन्म हुआ। तुम क्या समझती हो—मैंने कोई बुराई नहीं की है–कोई पाप नहीं किया है? दूसरे का दुःख अपने दुःख की याद दिलाता है और तब आँखों के दरवाजे से दिल

ललिता—आप को कौन सा दुःख है?

अश्गरी—दुःख कहने की चीज नहीं है ललिता? अगर यह कहा जा सकता। दुनियाँ तब शायद इससे साफ और सीधी रहती। कोई कह नहीं सकता। कहने की तबियत चाहती है। जो कुछ इस हृदय में है   हवा में उड़ा दें—सब सुन लें अगर ईश्वर भी कहीं है तो वह भी सुन ले और देख ले उसने
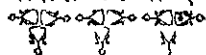
ललिता—तब क्या कहती है ? [सुखिया से] क्यों रो रही है—रे—यह ?

सुखिया—आई मे एक जने बाबू

ललिता—उसने मारा है इसे ?

सुखिया—कितािये छारि दिहलनि दूसर दिहलनि

[किताब आगे करती है—ललिता लेती है]

ललिता—कैसा विचित्र आदमी है ।

अश्गरी—[चौंककर] मेरी किताब

सुखिया—ऊहे ।

ललिता—[किताब खोलकर] अ —सप्रेम लेखक ? वही—किताब इसका मतलब कि इस पुस्तक के लेखक इस नाव में हैं ।

[अश्गरी ललिता के हाथ से झपट कर किताब ले लेती है। खोलकर देखती है ।]

अश्गरी—हा वही हैं—इसके लेखक ।

ललिता—सचमुच—

अश्गरी—हाँ—

ललिता—ओहो । चलिये मिल लें । जिस पुस्तक को पढ़ते पढ़ते तन्मय हो जाती हैं—उसके लेखक चलिये मिल लें । इसमे सन्देह नहीं बडे सुन्दर जीव हैं नहीं तो भला इतना बडा साहस कौन

अशगरी—मैंने दुनियाँ के सुन्दर जीवों को बहुत देखा है।

ललिता—इस पुस्तक के लेखक जिसे आप खूब और मुझे तो मालूम होता है उनका हृदय हम लोगों के हृदय की तरह कोमल है। पढ़ते पढ़ते हृदय हिलने लगता है –[खड़ी होकर अशगरी की बाँह पकड़ कर खींचती हुई] चलिए चलें।

अशगरी—बाँह छुड़ाकर मैं नहीं जाऊँगी—जिस आदमी से कभी छोड़ो तबियत अच्छी नहीं है।

ललिता—लेकिन मैं तो मिलना चाहती हूँ

अशगरी—जाओ मिल आओ—सावधान रहना।

ललिता—इसी लिए तो कहती हूँ आप भी चलिए

अशगरी—मैं नहीं जा सकती—जाओ मैं यहीं बैठी हूँ

ललिता—अच्छी बात है—न जाइए—चल रे लड़की देर कौन है [सुखिया से] यहीं रह। [मुन्नी को लेकर ललिता का प्रस्थान]

अशगरी—[सुखिया से] तुम भी जाओ

सुखिया—रज होइ हैं

अशगरी—नाव मे अकेले हैं या कोई और है ?

सुखिया—भीतर कोई ना रहल। मलहवा से कहल देखुरे कहा गइल हऊवनि–जल्दी नैया खुले

अशगरी—तब काई और हागा—नाव परसे उतर कर कहीं गया रहा हागा।

सुखिआ—अब जवन हाय

अशगरी—[उठकर] मैं ता जा रही हूँ—तुम यहा रहो। उ हे साथ लकर आना।

सुखिया—सबरा बइठा न सब लोग साथे चलब

अशगरी—तबियत अच्छी नहा है [अशगरी का एक ओर प्रस्थान—सुखि ।आ उसकी ओर देखते रहना और सिर हिलाना।]

सुखिया—हूँ तबियत अ छा नाहीं ह —मोहूँ जानत हौं—[सुखिया का नदा का ओर आना और आखो से ओझल होना।]

[रघुनाथ और मुनीश्वर का प्रवेश]

मुनीश्वर—तुम मर। विश्वास नहीं करत ?

रघुनाथ—अजी क्या फजूल

मुनीश्वर—फिर वहा—शैतानी

रघुनाथ—कृपाकर सभ्य श दा मे बातें कीजिये।

मुनीश्वर—मुझे क्या मालूम सभ्यता क्या है। लेकिन रघुनाथ मे हृदय से कहता ूँ—मुझे तुम्हारी इस विपत्ति से बड़ा दु ख हुआ है—लेकिन क्या करोगे दुनिया मे कौन सुखी है।

रघुनाथ—[उद्वेग से उसका ओर देख कर] लेकि । मैं भी हृदय से कहता हूँ—आप मेरी विपत्ति मे मजा उठा रहे हैं। सहानु
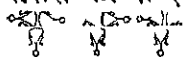
भूति और समवेदना क श द इतन रूख नहीं होते। जिनको वास्तव मे दु ख हाता है वे उपदश नहा दत। वे ता जग कभो स्यात हैं—उनकी आँखे डूबती रहती हैं। आप समझत हैं मैं जानता नही। पिता जी न अपना सब कुछ आपको दे दिया—मुझे भूखो मरत छोड कर। आपको कम स—कम यह सोचना चाहिये कि मैं खाऊगा क्या? आप मेरे रक्त से अपना गुलाब सींच रहे हैं—शायद एक दिन फूल मिल जाय। लकिन वह फूल कब तक रहेगा? [मुनीश्वर उसकी ओर सूखी नजरो से दखता है] रहेगा—हाँ रहेगा एक मुरझाएगा तो दूसरा खिलेगा। कुछ तो मेरा खून सब म रहगा।

मुनीश्वर—होश मे हो या नही

रघुनाथ—नहीं। इतन पर भी होश में? यह सम्भव है? मैं बेहोश हूँ जनाब बेहोश

मुनीश्वर—तुम्हारे पिता ने अपना धन, देश और समाज की सवा म लगाया-मेरा क्या दोष?

रघुनाथ—किस की स्कीम थो? किसन उ ह उसकी जरूरत का पहाड दिखलाया। वेश्या—सुधार उसके लिए मेरा सर्वनाश—ढागी, मक्कार

मुनीश्वर—मैं पूछता हूँ इसमे मेरा क्या दोष है?
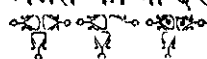
रघुनाथ—अदालत में मालूम होगा। जब तुम्हारे पत्र पेश किये जायग। तुमने एक पागल को बहका कर इसी सिल सिल में उसके लड़के का तबाह किया-शायद उसकी भी जान ला।

मुनीश्वर—अय ? [दाँतो के नीचे ओठ दबाता है]

रघुनाथ—अय नहा मै छल और फरेब नहीं जानता। मुझे और मेरे साथिया को स देह है कि तुमन ब ह जहर कर

मुनीश्वर—तुम्हार पिता को ? वे अस्पताल म मरे थे।

रघुनाथ—जीहा इसी लिए और स देह है। अस्पताल मे ले कौन गया था और कैसे ?

मुनीश्वर—ले ता मैं गया था लकिन उनके कहन पर

रघुनाथ—उनक कहन पर ? या उन्हें समझा कर बहका कर

मुनीश्वर— [मुस्करा कर] साबित कर सकाग ? तुम

रघुनाथ—कह नहीं सकता शायद

मुनीश्वर—और अगर न साबित हा ता जानते हा क्या हागा ?

रघुनाथ—जानता हूँ जेलखाने जाऊँगा। लेकिन बाहर रह कर ही क्या खाऊँगा।

मुनीश्वर—क्यो ? आश्रम मे कुछ काम करना। इसमें कोई हर्ज नही है—इसकी स्थापना तुम्हारे पिता के धन स हुई है।

रघुनाथ—मेरे पिता क धन से मरे नहीं ? ठीक है। लेकिन मैं वेश्या-सुधार—आश्रम में काम करूँगा ? मैं ? वेश्या सुधार हो सकता है ? यह काम तुम्हारा है—तुम्हारी लालसा के लिए नई दुनिया मिल रही है।

मुनीश्वर सेवा रघुनाथ।

रघुनाथ—सेवा नहीं लालसा और उपभोग—वासना और विकार मुनीश्वर! आज की दुनियाँ मे तुम्हारे ऐसे सेवक बहुत हैं—इसी लिए इसकी यह दशा है—यह रोज गिरती चलीजा रहा है—रोज तुम लोग अपनी लम्बी चौडी रिपोर्ट निकालते हो—स्कीम बनाते हो—आन्दोलन करते हो—यह सब दुनिया की भलाई के लिए नहीं बुराई के लिए हो रहा है। तुम वेश्या सुधार—आश्रम के व्यवस्थापक हो वह भी वर्ष दो वर्ष के लिए नहीं दस पाँच वर्ष के लिए नहीं जिन्दगी भर के लिए। मेरी दस लाख की सम्पति उसमें लग गई और रजिस्ट्री हुई तुम्हारे नाम से। मैं आज एक पैसे के लिए मुहताज हूँ।

मुनीश्वर—तुमने अपने पिता जी को रोका क्या नहीं ?

रघुनाथ—रोक नहीं सका

मुनीश्वर—[मुंह बना कर] तब मुझसे शिकायत क्यो ? मेरी सेवा के बारे में तुम्हें सन्देह हो तो मेरी इस साल की रिपोर्ट देखना।

रघुनाथ—वह तो मैं कह चुका हूँ–लम्बी चौड़ा आश्चर्य जनक होगा। उसमे सत्य कितना हागा लेकिन ससार का सत्य से क्या मतलब। कौन कितना धोखा सकता है–मेवा और योग्यता की यही सर्टिफिकट है।

[मल्लाह का प्रवेश]

मल्लाह—चार कास चढ़ के हौ बाबू—बडी रात भइल। कहा ठहरा जाई

मनीश्वर—[रघुनाथ से] चलते हो [मल्लाह से] चलो आ रहा हूँ [मल्लाह का प्रस्थान]

रघुनाथ—नहीं

मुनीश्वर—यहा कहाँ रहोगे ? रात को

रघुनाथ—तुमसे मतलब

मुनीश्वर—मैं तुम्हारी भलाई चाहता हूँ

रघुनाथ—अपने शिकार की ?

मुनीश्वर—तुम गलत समझा

रघुनाथ—अब तुम मुझे क्या समझाओगे ?

मुनीश्वर—अच्छा बात है—दो दिन यहा उपवास करना पडा अपने ही समझ जाओगे।

रघुनाथ—अजी जाओ मैं उपवास करूँ या मरूँ जड़ काट कर पत्ते को पानी देने से ही क्या होगा ?

मुनीश्वर—मैंने जड़ नहीं काटी है—अच्छे फल के लिए क़लम किया है अच्छे फल के लिए

रघुनाथ—अच्छी बात है। मै मान गया। आपने बड़ा अच्छा किया है बडा अच्छा दुनिया मे स्वर्ग बनाया है उसके देवता आप हैं। लेकिन मेरे फूल आपके चरणों के योग्य नहीं हैं—मुझे क्षमा कीजिये।

मुनीश्वर—तुम्हारी जहा तबीयत चाहे आओ—जो जी में आये करो। इस धमकी से मेरा क्या होता है ? [मुनीश्वर का प्रस्थान। रघुनाथ वहीं खडे खड़े चुपचाप गम्भीर मुद्रा में नदी के उस पार आकाश की ओर देखने लगता है। गोधूली हो चुकी है—आकाश में कहा कहीं दूर दूर पर तारे निकल रहे हैं। पूर्णिमा की सन्ध्या है। पूर्व की ओर से चाँद का लाल गोला यों यों ऊपर उठ रहा है सफ़ेद होता जा रहा है। कहीं कोई नहीं—एकान्त—निस्तब्ध। मुन्नी के साथ ललिता का प्रवेश मुन्नी रघुनाथ की ओर हाथ उठाती है]

ललिता—आपने इस लडकी की पुस्तक क्यो छीन ली ? [रघुनाथ गहरी चिन्ता में चुपचाप उसी प्रकार आकाश की ओर देखता हुआ खड़ा रहता है—मालूम होता है उसने ललिता की बात नहीं सुनी। ललिता उसकी ओर विस्मय से देखने लगती है। रघुनाथ की विचार धारा टूटती है वह ललिता की ओर देखता है। और सहम

उठता है।] आपने इस लड़की की किताब क्या छीन ली ?
[ललिता एक सांस में कह उठती है।]

रघुनाथ—मैंने ? [मुन्नी की ओर देख कर] आह–हो इसने फरियाद किया क्या ?

ललिता—क्या करती ?

रघुनाथ—लेकिन मैंने उसके बदले में नई कापी दे दी।

ललिता—कृपा कर वही पुरानी दे दीजिये मुझे उसकी जरूरत है। जिसकी वह प्रति है वह।

रघुनाथ—उसे यह नहीं दे दीजिएगा ?

ललिता—[मुन्नी को किताब देकर] दे डाल इसे। वही पुरानी दे

रघुनाथ—क्षमा कीजिए वह तो नाव पर छूट गई—मैं कहां से लाऊँ।

ललिता—इस पुस्तक के लेखक आपही ?

रघुनाथ—हां—लोग कहते तो ऐसाही हैं ?

ललिता—लेकिन यह आप की लिखी है या नहीं आप नहीं जानते। ऐसा ही है न ?

रघुनाथ—मैं यह भी नहीं जानता—मैं कुछ नहीं जानता इस विषय में। किसकी है कैसी है ? आप को वह प्रति कहाँ मिली थी ?
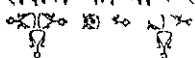
ललिता—मिल गई थी एक जगह। इस टाऊन में लड़कियों का स्कूल है उसकी अध्यापिका से मिली थी।

रघुनाथ—क्या नाम है उनका ?

ललिता—ठहरिये पहले मुझे पूछ लेने दीजिये फिर मैं आप का उत्तर दूँगी। मैं आपका परिचय जानना । आप कौन हैं ? आपकी क्या जाति है ? क्या अवस्था है ? आप यहाँ कैसे और किस लिए आए ?

रघुनाथ—Too much aggres ive

ललिता—आप लोग लेखक होते हुए भी अपनी भाषा में नहीं बोलते। इतनी ईमानदारी भी आप लोगों में नहीं है। अगर मैं अंग्रेजी नहीं जानती ? खैर इसमें (aggres iveness) क्या है महाशय ?

रघुनाथ—किसी के बारे में इतनी पूछ ताछ करना। या तो मैं अपनी सब बातें बता कर अपने को नग्न कर दूँ—या झूठ बोलूँ। लेकिन मैं मैं इन दोनों में कोई नहीं चाहता।

ललिता—खैर अगर आपको हा । छुई मुई की सा है, छू लिया बस आप सिकुड़ गये सकुचित हो गये तो कोई बात नहीं। कष्ट के लिये क्षमा। आपने इसकी पुस्तक न छीन ली होती तो यह नौबत क्या आती ? उन्होंने कहा इस पुस्तक के लेखक आप हैं। मैंने उचित समझा

रघनाथ—इसके लिय आपको ध यवाद दता हूँ।

ल िता—लकिन मुझे यह स्वाकार नही है। राह चलत चलत ध यवाद की गठरी मुझे बाझ ढाने की आदत नहीं है। मैंन आपका परिचय पूछा है मनुष्यता के नाते आपको इसका उत्तर देना चाहिये। छिपान की कोई खास जरूरत हो—ता मैं आपको मजबूर भी करना नहीं चाहती।

रघुना थ—[कुछ साचकर] मनुष्यता का काई नाता हाता है? मनुष्यता क नात से मेरे पिता जी न एक पिशाच का अपन साथ परिचय बढान दिया—उसका नतीजा हुआ उसन उनका भी सर्वनाश किया और मेरा भी। खैर वे तो मर गये लकिन मैं मैं भी मनुष्यता का नाता? ससार म सब से बडे अत्याचार और पाप दो ही चीजा क लिये हुये हैं—ईश्वर क लिये और इस मनुष्यता क लिये। ईश्वर क लिय लाग जलाये गये और मारे गये—मनुष्यता क लिये लागा की स्वत त्रता छीनी गई—लोग भटकेंगे—दुनियाँ गुलाम बनी। लकिन यह भ्रम कितना महान है।

ललिता—मालूम हो रहा है आप आसमान में उड रहे हैं—इधर उधर सब ओर और किसी ओर नहीं। एक ओर उडते होते तो कुछ दूर गये भी होते। कम से कम आप का यह तो सोचना चाहिये, आप अपरिचित मनुष्य से बातें कर रहे हैं।
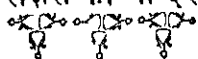
रघुनाथ—[सम्हल कर] मनुष्यता के नाते मे भी परिचय की जरूरत पड़ती है ?

ललिता—लेकिन आप तो उस नाते को नहीं न मानते ?

रघुनाथ—लेकिन आप तो मानती हैं ?

ललिता—मेरे मानने से क्या होता है ?

रघुनाथ—लेकिन मेरे न मानने से क्या होता है ?

ललिता—[हसती हुई] क्या खूब ? तो आप न बतायेंगे ?

रघुनाथ—अभी बतलाना कुछ बाकी है ? मेरा परिचय उसी पुस्तक में आपको नहीं मिला ?

ललिता—खैर मुझे देर हो रहा है—[ललिता का प्रस्थान—रघुनाथ उसकी ओर देखता रहता है। ललिता के चलने से मालूम होता है जैसे वह मजबूर हो कर चल रही है अन्यथा चलना नहीं चाहती—कभी तेज कभी धीरे कभी रुक कर । इस तरह ललिता दूर निकल जाती है—चादनी में देख नहीं पड़ती। रघुनाथ धीरे धीरे नदी के किनारे चला जाता है। मुनीश्वर और अशगरी का प्रवेश]

मुनीश्वर—यहा तो था [अशगरी चारो ओर देखती है] तो तुम तैयार नहीं हो ?

अशगरी—नहीं—जब तक मैं अपना सुधार नहीं कर लेती।

मुनीश्वर—तुम्हे क्या सुधार करना है ?

अशगरी—मुझे सुधार नहीं करना है? मुनीश्वरजी आप दुनियाँ को धाखा दे रहे हैं— नहीं तो आप वेश्या-सुधार-आश्रम म क्या करेंगे—मुझे मालूम है। आप सुधार करने क लिए बनाये नहीं गए थ। आप ता बनाये गए थे दुनियाँ का ठगन के लिए। आप अपना काम करते चलिये। सुधार के बहाने जिनका फँसाकर आप अपन आश्रम मे रखेंगे उनमे काई न काई आपक मतलब का मिल जायगा।

मुनीश्वर— अशगरा! मरे आश्रम से समाज की बड़ी सेवा हागी। मैं चाहता था इस काम में तुम्हारा भी कुछ हिस्सा होता। रामलाल जी न अपनी सारी सम्पति आश्रम को दे दी तुम्हारा ही ध्यान रख कर। वे मरन के समय तक तुम्ह याद करत रहे।

अशगरी—इसका मतलब यह कि उ हा न सवा भाव स कुछ नहीं किया। मरन के समय तक अपन लिए नरक का सामान इकट्ठा करत रहे। इसमे आपन उनका मदद की।

मुनीश्वर— तुम जानती हा मै नरक स्वर्ग कुछ नहीं मानता। यह सब पुजारिया और पडा के कारनामे क हैं।

अशगरी—वैस हा जैसा आपका आश्रम है।

मुनीश्वर—मेरा आश्रम इतना झूठा नहीं है।
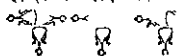
ग्रगरी—आपके आश्रम से बढ़कर झूठा दुनियाँ में और क्या है—मैं नहीं जानती। आपने रघुनाथ का सब कुछ लेकर—बेचारे को उसके घर से निकाल दिया।

मुनीश्वर—वह कैसे ?

ग्रगरी—ग्रभी उससे जो बात हुई हैं—मैं सब सुनती रही हूँ। तबियत चाहता था सिर पटक दूँ या आपको [उत्तेजित हो उठती है]

मुनीश्वर—[हँसते हुए] मुझे आग में डालो, पानी में डालो—साँप से कटाओ या ज़हर दे दो मुझे तो सब कुछ स्वीकार है। तुम्हारे हाथों से जो [अशगरी का हाथ पकड़ता है अशगरी झिझक कर पीछे हटती है] सुनो तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता।

अशगरी—मेरे बिना ? हाँ तो यह सब मेरे लिए हुआ है। मेरे लिए। पापी पुरुष ईश्वर से भी डरो

मुनीश्वर—ईश्वर प्रेम करने की चीज है अशगरी डरने की नहीं। उसी ने तो यह सारा तमाशा खड़ा किया है—नहीं तो जो तुम वहाँ मैं

अशगरी—यह उसूल जिन्दगी में रहना चाहिए बातों से कुछ नहीं होता।

मुनीश्वर—तुम्हें चलना पड़ेगा ?

अशगरी—जबरदस्ती ?

मुनीश्वर—मैं उस लायक भी हूँ।

अशगरी—वे दिन चल गये।

मुनीश्वर—कभी नहा। वे चले जायेंग ता दुनिया चली जायगी। दुनिया म वे ही रहगे। दुनियाँ में उनक सिवा और कुछ नही है

अशगरी कुछ नहा है ? क्या कह रहे हो ?

मुनीश्वर जो कह रहा हूँ ठीक समझ कर [अशगरी को ओरदेखने लगता हे]

अशगरी—ता तुम मुझे जबरदस्ती ले जाओगे ?

मुनीश्वर—हाँ तुम्हारा सुधार करने क लिए। तुम्हे प्रेम का अमृत पिला कर जिलान के लिये और तुम्हारा पूजा करन के लिये। तुम्हारे बिना आश्रम कैसा हागा मैं समझ नहीं सकता। तुम्हारा वही प्रमी एक बार फिर तुम्हारे हृदय के दर वाज पर भीख माँग रहा है। उस विमुख करागी ? है यह सम्भव ? [अशगरी मुनीश्वर की ओर विस्मय और उद्वेग से देखने लगती है। मुनीश्वर उसकी ओर देख कर भौंह नचाकर मुस्कराता है। अशगरी घूम कर जाना चाहती है]

मुनीश्वर—तुम फजल उधर बढ रही हो। मैं कह चुका हूँ जबरदस्ती ल जाऊँगा। मैं अपना अधिकार नहीं छोड सकता।

ठहरा [अशगरी चलती ही जाती है।] अच्छा चलो देखूँ तुम्हें कौन मेरे न जाने से रोकता है।

अशगरी—[खड़ी हो कर ऊपर आकाश की ओर हाथ उठाती हुई] वही जो ऊपर है और जो यह सब देख रहे हैं

मुनीश्वर—ऊपर कोई नहीं है—मैं हूँ मैं ही ईश्वर-स्वर्ग नरक जो है कुछ, सब हूँ। यह गुलामी—[आगे बढ़ कर उसका हाथ पकड़ता है]

अशगरी—ईश्वर से डरो पापी पुरुष

मुनीश्वर—मैंने कह दिया मैं ईश्वर हूँ। ईश्वर कमजोरों के लिए है। जो अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकते ईश्वर के सहारे खड़े होते हैं। [अशगरी को अपनी ओर खींचना चाहता है। अशगरी वहीं ज़मीन पर बैठ जाती है। दूर से एक कंकड़ आकर मुनीश्वर के हाथ में लगता है। उसका हाथ झन्न से छो उठता है अशगरी का हाथ छूट जाता है। मुनीश्वर एक हाथ से चोट दबाकर जिधर से कंकड़ आता है उधर देखने लगता है] प्रतिहिंसा ? रघुनाथ! सावधान रहना। [नेपथ्य में] अब क्या करोगे ?

मुनीश्वर—अभी कुछ करना है। अभी मैंने किया क्या ? अब देखना ! [नेपथ्य में] चुप रह बेहया।

मुनीश्वर मालूम होता है अब मुझे तुम्हारे लिये हथकड़ियों की भी तैयारी करनी पड़ेगी। तुम्हारी दवा—[तेज़ी से रघुनाथ का प्रवेश]
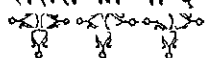
रघुनाथ—राक्षस ! [रघुनाथ बाये हाथ से मुनीश्वर का गला पकड़ता और दाया हाथ उसकी कमर में डाल कर उसे ज़मीन पर दे मारता है। मुनीश्वर ज़मीन पर चित्त गिरता है। रघुनाथ उसकी छाती पर पैर रखता है।]

अशगरी—हां ठीक है मार डालो इसे इसने

[ललिता का प्रवेश। ललिता यह देखकर भय और विस्मय से पीछे हटती है।]

ललिता—अय—यह कवि का काम ? मनुष्य की छाती पर पैर ! छी आप तमाशा देख रही हैं ?

[अशगरी की ओर देखती है]

अशगरी—इसी ने मुझे स्वर्ग से खींच कर नरक में पटक दिया [ललिता रघुनाथ को ढकेल कर अलग कर देती है]

मुनीश्वर—[बैठकर] सच कह रही हो ? मैंने ही तुम्हें स्वर्ग से खींच कर नरक में पटक दिया ? तुम खुद गिरी। मैं नहीं रहता तो पता नहीं कितने गहरे गई होती। मैंने उस तूफान को रोका जो तुम्हें पत्ते की तरह जहां चाहता उड़ाता फिरता। [एक ओर से अशगरी और दूसरी ओर से मुनीश्वर का प्रस्थान]

ललिता—आप कितने निष्ठुर हैं ?

रघुनाथ—शायद

ललिता—शायद नहीं सच

रघुनाथ—होगा

ललिता—जैसे यह बड़ी छोटी बात है

रघुनाथ—मेरे लिए तो

ललिता क्या आप के लिए

रघुनाथ—कुछ नहीं आप जाइए।

ललिता—मनुष्य की छाती पैर

रघुनाथ—वह मनुष्य नहीं राक्षस है।

ललिता—क्यों ?

रघुनाथ—जो है उसके लिए क्यों का क्या जरूरत ? वह मनुष्य नहीं राक्षस है उसने धर्म के नाम पर वेश्या—सुधार आश्रम के नाम पर मेरे पिता से उनकी सारी सम्पति ले लिया और मुझे घर से मैं आज [उसकी ओर देख कर] क्या कहूँ—मेरे लिए यह ठीक नहीं—कहां रात और कहा सबेरा ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ मैं पैर दबा कर खड़ा रह सकूं।

[ललिता गंभीर होकर कुछ सोचने लगती है। या तो मैं इसे मार डालूंगा या अपने मर जाऊंगा। दोनों का जीना—शायद सम्भव नहीं।

ललिता—ऐसा आदमी ? लेकिन आपको क्षमा करना चाहिए।

रघुनाथ—मुझे करना तो बहुत कुछ चाहिये। लेकिन यदि मैं कर सकूं। मैं अपने वश में नहीं हूँ। मुझे होश नहीं है—कहाँ जा रहा हूँ किस ओर [दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं]

ललिता—क्या आप मरी [एकाएक चुप हो जाती है रघुनाथ चुप चाप उसकी ओर देखता रहता है]

रघुनाथ—किस लिए ?

ललिता—मुझे डर है इस मानसिक निराशा मे आप पागल न हो नाथ

रघुनाथ—आह ? पागल कितना सुन्दर होगा, जैसा दिन वैसा रात जैसा सुख वैसा दुख। सब एक सा। कही कुछ नहीं

ललिता—यह तो आप कविता करने लगे !

रघुनाथ—नहीं सच बात है।

ललिता—कविता भी तो सच बात ही

रघुनाथ—बिलकुल नहीं। कविता करते समय लोग मृत्यु को चैलेंज देते हैं। लेकिन अगर कहीं फोड़ा हो जाय और उसका आपरेशन कराना पड़े तब मालूम होता है—मृत्यु क्या है ?

ललिता—आज आप मेरे यहाँ चलें। आप की तबियत

रघुनाथ—मुझे बदला लेना है और जब तक वह नहीं हो जाता—मुझे

ललिता—आप इसके योग्य नहीं हैं। इसके लिए आप कष्ट उठायेंगे। परेशान होंगे। कुछ होगा नहीं। आप को किसी
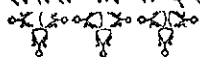
शा त वातावरण मे चुप चाप कलम और कागज लेकर बैठ जाना चाहिये।

रघुनाथ—जिन्दगी को लात मार कर

ललिता—नहीं जि दगी का सजा कर उस महान और सुन्दर बना कर। क्षुद्र प्रवृत्तिया के चक्कर मे पड़न से लाभ

रघु ाथ—क्षुद्र प्रवृत्तियाँ ? बात ता ठीक मालूम हा रही है—लेकिन मैं इसे समझता नहीं। मरे भीतर जैस काई कह रहा है—उठो—चल पड़ो और बदला लो। मैं मजबूर हूँ। मैं भी तो मनुष्य हूँ—मेरे भी हृदय है। उसमे दु ख है क्रोध है। मैं क्या करूँ ? मेरा क्या दोष ? चुपचाप अ याय सह लेने में मेरी मनुष्यता रा पड़ेगी। दुनिया मुझे

ललिता—दुनियाँ स ज्यादा अपनी चि ता करनी चाहिए। और फिर आपको क्या पता मेरी तरह दुनियाँ क कितन जीव आपस यही कहेंगे।

[रघुनाथ सहानुभूति की दृष्टि से ललिता की ओर देखता है। ललिता उसकी ओर देखकर नज़र नीची कर लेती है नपथ्य मे जङ्गली जानवरों के बोलने की आवाज़]

रघनाथ—कितनी रात गई होगी ?

ललिता— कम से कम दा घड़ी

रघुनाथ— आपका घर कितनी दूर है ?

ललिता—प्राय एक मील

रघुनाथ—यहा इस समय ठहरना सुरक्षित नहीं। कितना सुनसान है।

ललिता—कोई भय नहीं है—मै तो यहा इस समय प्राय आया करती हूँ। प्रकृति का सुख यह कहा मिले ?

रघनाथ—अच्छी बात है आप जाइए ?

ललिता—और आप ?

रघुनाथ—मैं क्या ?

ललिता—आप इस रात का

रघुनाथ—यहीं या और कहीं

ललिता—अगर और कहीं तो मेरे यहा

रघुनाथ—और कहीं नहीं बस यही

ललिता—लकिन यहाँ अकल

रघुनाथ—कोई भय नहीं और फिर मुझे तो अकेले

ललिता—यह कौन जानता है ?

रघुनाथ—मैं जानता हूँ

ललिता—आप सब कुछ नहीं जानते। कब क्या हागा—कहा नहीं जा सकता ?

रघुनाथ—कहा तो नहीं जा सकता। लेकिन जिसका पता नहीं उसपर विश्वास भी तो नहीं हो सकता। मैं ता आज के लिये
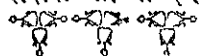
जीता हूँ—कल क्या होगा ? कल जाने। उसकी चिंता—अशगरी की भेंट आप से कब हुई ?

ललिता—अशगरी कौन ?

रघुनाथ—वही जो आप के साथ यहाँ आयी थी।

ललिता—तो क्या उसका जन्म मुसलमान घर में हुआ है ?

रघुनाथ—हाँ—

ललिता—हे भगवान !

रघुनाथ—क्या हुआ ?

ललिता—उनका छुआ मैंने जल पिया है—वे शालिग्राम की पूजा करती दोनों समय घंटी बजाती हैं, आरती करती हैं। भोग चढ़ाती हैं एकादशी का व्रत रखती हैं—निर्जल

रघुनाथ—[विस्मय से] यहाँ तक ? वे रहती कहा हैं ?

ललिता—मेरे ही मकान में।

रघुनाथ—तब तो मुझे भी वहां चलना होगा। उसकी जिन्दगी देखने के लिए। इतना परिवर्त्तन ? संसार भी क्या विचित्र है।

ललिता—तो फिर चलिये [दोनों का प्रस्थान]

[मुनीश्वर का प्रवेश—मुनीश्वर इधर उधर चारों ओर देख कर आकाश की ओर देखने लगता है क्षण भर के बाद एक ओर निकल जाता है पर्दा उठता है। अशगरी का कमरा। काठ की चौकी पर सुन्दर पीतल की डिबिया में शालिग्राम की मूर्ति। पूजा के बर्तन। फल फूल
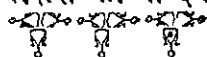
घटी। अरघे में आग लेकर अश्गरी का प्रवेश। सफेद साड़ी खुले बाल। अश्गरी चौकी के एक कोने पर अरघा रख देती है। विधिवत शालिग्राम की पूजा प्रारम्भ करती है। कुछ देर बैठ कर धीरे धीरे कुछ गुन गुनाती है। मूर्ति को स्नान कराती है। सूखे वस्त्र से पोछ कर फिर रखती है। फूल चढ़ाती है—फल चढ़ाती है नैवेद्य चढ़ाती है झुक कर बायें हाथ से घंटी बजाती है और दायें हाथ से आरती उतारती है।

रघुनाथ का प्रवेश—रघुनाथ कमरे के दरवाज़े पर खड़ा हो कर यह दृश्य देखता है। आश्चर्य और विस्मय उसके चेहरे पर देख पड़ता है दायें हाथ की हथेली अपने सिर पर रख कर झुक कर खड़ा होता है। अश्गरी घूम कर उसकी ओर देखती है।]

रघुनाथ—अश्गरी

अश्गरी—[प्रसन्न हो कर] आप यहां कैसे कहिए।

रघुनाथ—यह क्या ?

अश्गरी—क्या हुआ ?

रघुनाथ—तुम शालिग्राम की पूजा करती हो ?

अश्गरी—हां

रघुनाथ—कब से क्यों कैसे ?

अश्गरी—मुझे नहीं मालूम ?

रघुनाथ—तो तुम भी दुनिया को धोखा दे सकती हो।

अश्गरी—इसमें धोखा क्या है पागल ?

रघुनाथ—लोग तुम्हे हिंदू समझते हैं। तुम्हें मसजिद मे खड़ी होकर, झुककर बैठ कर, लटकर इबादत करनी चाहिए।

अशगरी—इबादत कैसी हो यह तो इबादत करने वाले पर है। मुझे यही तरीका अच्छा मालूम होता है। भगवान के आमने सामने बैठकर

रघुनाथ—तुम क्या से क्या हो गई ?

अशगरी—सचमुच [मुस्करा उठती है]

रघुनाथ—शालिग्राम की पूजा सचमुच करती हो ?

अशगरी—मैं क्या करती हूँ यह आप जान कर क्या करेंगे ? आप इधर रास्ता कैसे भूल गए ?

रघुनाथ—तुमने जो यहां तमाशा खड़ा कर रखा है, वही देखने के लिए ?

अशगरी—[क्रुद्ध होकर] आप के घर में मेरे जो तमाशा खड़ा किया था, उससे तबियत नहीं भरी क्या ? जो यहां आकर । आप लोग कितने संकीर्ण हैं। हर एक आदमी के जीने का तरीका अलग है। मैं इसी तरह जी रही हूँ। आखिर कार आप मुझे जीने देंगे या नहीं [रघुनाथ कुछ सोचने लगता है अशगरी उसका ख्याल न कर फिर पूजा में लग जाती है रघुनाथ कुछ देर यों का त्यों खड़ा रहता है—फिर जैसे कुछ सोच कर कमरे में प्रवेश करता है—अशगरी के पीछे खड़ा होता है। अशगरी हाथ जोड़

कर मूर्ति के सामने ज़मीन पर सिर रख देती है रघुनाथ झुककर उसके सिर पर हाथ रख देता है।]

अशगरी—यह क्या ? [रघुनाथ की ओर सिर घुमाकर देखती है]

रघुनाथ—वरदान

अशगरी—तुम्हारा

रघुनाथ—क्या तुम्हे स देह ?

अशगरी—अब मुझे मनुष्य के वरदान की जरूरत नहीं है।

रघुनाथ—यह मेरा पहला और अन्तिम वरदान है—सदैव के लिए।

अशगरी—मुझे मनुष्य के वरदान मे विश्वास नहीं है—चाहे वह पहला हो या अन्तिम।

रघुनाथ—पहला और अन्तिम वरदान सदैव देवता का होता है। मेरे भीतर भी वह देवता है।

अशगरी—यह सब तो कहने की बात है।

रघुनाथ—मैंने तो वरदान दे दिया—लौटा नहीं सकता।

अशगरी—खैर तुम चाहते क्या हो ?

रघुनाथ—कुछ नहीं। मेरे हृदय मे तुम्हारे लिए बुरी भावना थी—वह सदैव के लिए मिट गई।

अशगरी—मैं अब भी वहीं हूँ। इस जीवन के साथ जो कलंक है मिटाया नहीं जा सकता।
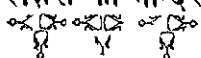
रघुनाथ—मरे लिए ता मिट गया

अश्गरी—तुम्हारे लिए शायद लेकिन सारी दुनिया क लिए नहीं।

रघुनाथ—सारी दुनिया का परवाह क्यो करती हा ?

अश्गरी—फिर तुम्हारी हा परवाह क्या करूँ ?

रघुनाथ—किसी का ता परवाह कराागी ? तुम्ह किसी का परवाह करना हागी ? इस तरह जि दगी का रास्ता तुम नहीं भूल सकागी।

अश्गरी—अब किस लिए। मरे पास क्या है ? जिसकी चि ता करूँ। कोई भी रास्ता मुझे भटका न सकगा।

रघुनाथ—तुम्ह अपन पर इतना विश्वास है ?

अश्गरी—अब हा गया है

रघुनाथ—कल मिट सकता है

अश्गरी—कल क्या होगा ? कौन जान

रघुनाथ—जो हो लकिन उसके लिए

अश्गरी—उसक लिए कुछ नही। अगर आ है जो है रहेगा।

रघुनाथ—वही ता नहीं रहता नहा तो दुनिया इतनी नटिल नही होती। दुनिया क नीव इस तरह प्रकाश और अ धकार मे नही भटकते।

अस्गरी—वह प्रकाश और अंधकार तो तुम्हारे मन का है। दुनिया का नहीं। दुनिया में तो वे मिले हुए हैं—एक—सब ओर एक और कुछ नहीं। प्रकाश और अंधकार में सामञ्जस्य सुख और दुःख में सामञ्जस्य जीवन और मरण में सामञ्जस्य। सत्य के टुकड़े कर न देखो रहने दो एक और तब देखो।
[रघुनाथ गम्भीर होकर कुछ सोचने लगता है अस्गरी उसकी ओर देखती है]

रघुनाथ—रोम्याँ रोलाँ कही [चुप हो जाता है]

अस्गरी—क्या चीज ?

रघुनाथ—कुछ नहीं। रोम्या रोलाँ ने अपने याक्रिस्तोफ में ऐसा ही कहा है।

अस्गरी—कैसा ?

रघुनाथ—जैसा तुम कह रही हो।

अस्गरी—क्या कहा है ?

रघुनाथ—ठीक याद नहीं पड़ता

अस्गरी—कुछ तो कहो।

रघुनाथ—उन्होंने कहा है या उनके महान चरित्र याक्रिस्ताफ ने अनुभव किया है—"तुम्हारा फिर जन्म होगा। विश्राम करो। दिन और रात को [कुछ देर ठहर कर] हाँ—दिन और रात की मुस्कराहट एक दूसरे का आलिंगन कर रही है। हे साम
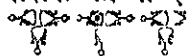
अस्थ ! प्रम और घृणा के महान मिलन में ईश्वर के सामन दा उन्नत स्वरो मे गा रहा हूँ जीवन का विजय हो मृत्यु की विजय हो'। एसा ही तुम भी करती हो। इसी तरह का तुम कितन ऊँच उठ गई

अशगरी—रघुनाथ बाबू न मैं ऊपर उठी और न नीच गिरी। मैं अब भी वही हूँ—वही शरीर वही आत्मा वही जिन्दगी सब कुछ वही मैंन सिर्फ अपना रास्ता बदल दिया है। इसे गिरना समझा या उठना। कहाँ जाना है—कितनी दूर जाना है यह मैं नहीं जानता। चल पडी हूँ—मैं हूँ और [मूर्ति की ओर सकेत कर] भगवान हैं

रघुनाथ—[सहम कर] मुझे साथ न ले चलोगी ?

अशगरी—तुम अभी बच्च हो तुम्हारे पैरो म ताकत नहीं है। तुम्हारी चिन्ता में मैं अपन भगवान को भूल जाऊगी। यह सौदा बड़ा महगा होगा।

रघुनाथ—क्या तुम्हारा भगवान मेरे भीतर नहीं है ?

अशगरी—हो सकता है लकिन मैं उस भगवान को चाहता हूँ जो इस मूर्ति म है तुम्हारे भीतर भगवान अगर है तो जेलखान मे है। जजीरो म जकड़ा हुआ है।

रघुनाथ—उसकी जजीर काट दो ? क्या ? [उसकी ओर देख कर मुस्कराता है]
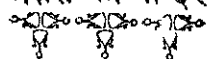
असगरी—यह ताकत मुझमे नहीं है। उसकी जजीरें तुम्हारे मरने पर कटेंगी।

रघुनाथ—मरे मरन पर ? तुम मेरा मरना चाहती हो ?

असगरी—नहीं बिलकुल नहा। लेकिन मेरे न चाहन स तुम अमर नही हा जाओगे। आखिरकार तुम्हें मरना ताहै—आज नहीं तो कल जितना ही जल्दी मराग उतना ही जल्दी—उसका छुटकारा होगा।

रघुनाथ—ता आत्महत्या कर ल ?

असगरी—अगर कर सको

रघुनाथ—क्या ?

असगरी—आपन भीतर के भगवान को स्वतन्त्र करन के लिये ? अपन कष्ट के साथ ही साथ तुम उसे भी कष्ट दे रहे हो।

रघुनाथ—उस भा कष्ट हाता है ?

असगरी—तुम्हे कुछ भा हाता है—सब उसे हाता है।

रघुनाथ—हूँ ता क्या करू ? आत्म हत्या ?

असगरी—बिल्कुल आत्महत्या नहा। जिन बाता से तुम्हें कष्ट होता है—उ ह हृदय मे निकाल फेंका। तुम्हारे भीतर का भगवान प्रसन्न होगा। मुनीश्वर को क्षमा कर दो अपन पिता जी को क्षमा कर दा और यदि हो सके तो मुझे भी। अपनी
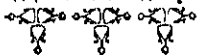
सीमाओं को पार कर जाओ—बस तुम देवता हो—देवत्व के लिए बस इतना ही

रघुनाथ—यदि यही सम्भव

अशगरी—[उसकी ओर देख कर] रघुनाथ बाबू !

रघुनाथ—कहो !

अशगरी—सम्भव असम्भव तो अपनी तबियत की बात है। अपनी मुक्ति अपने हाथ मे है।

रघुनाथ—हो सकता है जी लेकिन

अशगरी—ठहरो अभी आ रहा हूँ [अशगरी का प्रस्थान]

रघुनाथ—मुझे जाना है दूर होगी

अशगरी—[लौट कर] इस रात को

रघुनाथ—हाँ अभी

अशगरी—क्या कहते हो वही पागलपन [अशगरी का प्रस्थान]

[रघुनाथ इधर उधर कमरे मे टहलने लगता है। शालिग्राम की मूर्ति को उठाकर सिर पर रखता है। भगवान मेरे लिये कोई रास्ता नहीं है ? यदि है तो बताओ चाहे वह कहा हो किसी ओर हो जितने दिन जितने वर्ष या जितने युग चलना पडे चलता रहूँगा नेपथ्य मे— वह रास्ता जिन्दगी का है—उसे समझना चाहिये। रघुनाथ चौंक कर सहम जाता है। मूर्ति को उसकी जगह पर रख कर वहीं जमीन पर कम्मल पर बैठ जाता है—[ललिता का प्रवेश]

ललिता—आप जमीन पर बैठे हैं [आगे बढ़ कर रघुनाथ की बाह पकड़ कर] उठिये चलें

रघुनाथ [बाह छुड़ा कर] ऊह

ललिता—क्षमा कीजिए ! मैं नहीं समझती

रघुनाथ—आप का इतना जानना चाहिए कि अपरचित व्यक्ति स कैसा व्यवहार किया जाता है।

ललिता—मैं यह सब जानती हूँ जनाब

रघुनाथ—आप नहीं जानतीं।

ललिता—आप मेरे घर में मेरा अपमान कर रहे हैं।

रघुनाथ—यह बुरा नहीं है अपने घर में आपका अपमान नहीं करता।

ललिता— हूँ [नीचे ज़मीनकी ओर देखने लगती है—रघुनाथ उसकी ओर देखकर मुस्करा उठता हे। असगरी दरवाज़े के सामने तक आती है। उन दोनों का देखती है और पीछे हट कर दरवाज़े से लगकर खड़ी हो जाती है !]

रघुनाथ—मालूम होता है आप रंज हो गईं

ललिता—जी नहीं आप अपने घर में मेरा अपमान नहीं करते मैं भी अपने घर मे आप से रंज नहीं होती। बड़े भाग्य से आज आप मेरे अतिथि हैं। अतिथि देवता का स्वरूप होता है।

रघुनाथ—होता होगा लेकिन मेरे ऐसा अतिथि नहीं !

ललिता—आपही के ऐसा अतिथि जिसके साथ व्यवहार करने में डरना पड़े। जिसकी मर्जी दुनिया के खिलाफ हो

रघुनाथ—खैर आप चाहती क्या हैं ?

ललिता—कुछ विशेष नहीं—केवल यही कि मुझे अतिथि सत्कार अपनी सेवा का अधिकार आज दे दें।

रघुनाथ—मुझे यहां ठहरना नहीं है। आप परेशान न हों।

ललिता—इस समय तो आप को ठहरना होगा। अब इस समय

रघुनाथ—अगर ठहर सकता तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती।

ललिता—लेकिन बाधा क्या है ?

रघुनाथ—मेरी तबीयत।

ललिता—उसे वश में कीजिए।

रघुनाथ—इसी लिए तो जाऊँगा। अगर वश मे नहीं करता तो शायद जा न पाता।

ललिता—तो आप मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे।

रघुनाथ—जी नहीं।

अश्गरी—[कमरे मे प्रवेश करते हुए] और मेरी

रघुनाथ—आपको तो मनुष्य में विश्वास नहीं है—इसलिए शायद आप मनुष्य से कुछ कहे भी न ?

अश्गरी—मुझे मनुष्य के वरदान मे विश्वास नही है—और फिर तुम तो वरदान भी दे चुके हो—और उसे लौटाना भी नहीं चाहते।

रघुनाथ—मैं जो कुछ करता हूँ मजबूर होकर। जैसे और लोग सोच विचार कर सब तरह से हर एक पहलू देख कर करते हैं—वह मुझे नहीं आता। यहाँ तो [कुछ देर रुक कर] लहर आता है और मुझे कहाँ से कहा पहुँचा देती है। मैं देखना चाहता हूँ देख नहीं पाता। समझना चाहता हूँ समझ नहीं पाता। मेरी दशा न तो पार लग रहा हूँ और न डूब रहा हूँ। जिन्दगी के थपेड़े [उसका गला रुँध जाता है]

अश्गरी—घबड़ाने की जरूरत नहीं है—भगवान के भरोसे हाथ पैर फेंकते चलो पार लगना वह तो होगा ही। [ललिता रघुनाथ की ओर सहानुभूति की नजर से देखती है]

रघुनाथ—भगवान के भरोसे! किया है किसी ने कभी उसका भरोसा। किसी का भरोसा न कभी पूरा हुआ है न होगा। मुझे तो भरोसा करना होगा तो मैं पिशाच का करूँगा किन्तु भगवान का नहीं।

ललिता—चुप भी रहिए।

रघुनाथ—क्यों कि आप को बुरा मालूम हो रहा है—भगवान क्या है। तुम न समझोगी। दुर्भाग्य के थपेड़ो का पता चला होता तो भगवान की बात

अश्गरी—रघुनाथ बाबू मैं किससे कहूँ और क्या कहूँ ?

रघुनाथ—किसी से नहीं।

अश्गरी तब फिर आप की शिकायत कैसी ? भगवान का भरोसा इस बिगडे जमाने मे भी बहुत कुछ है आप के पिता जी 'ताको भलो अजहुँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीत है आखर दू की" बराबर गाया करते थे। सवेरा होता था—अभी थोडी सी रात रहती थी वे विनय पत्रिका के पद गाना शुरू कर देते थे। मालूम होता था क्या कहूँ मेरी नींद कभी कभी खुल जाती थी वे क्या गाते थे सब समझ में तो नही पड़ता था लेकिन तब भी जैसे दिल साफ हो जाता था। हम लोगों के बहुत से दुर्भाग्य हमारे ही बनाये हुए हैं।

रघुनाथ—[कुछ सोच कर] ठीक तो मालूम हो रहा है लेकिन यह बड़ी मुश्किल बात है—[हृदयपर हाथ रख कर] मैं तो समझता हूँ यहा भगवान से ज्यादा जगह पिशाच को मिली है वही यहा का राजा है वह इसकी व्यवस्था करता है खबरदारी करता है वह कुरूप तो है भयङ्कर तो है लेकिन जो है समझ पड़ता है आँखो के सामने आता है और भगवान यह सपना मैं इस फेर मे पड़ना नहीं चाहता। जिसका पता नहीं जो जाना नही जा सकता पिशाच बराबर मुस्कराता रहता है दुःख और दुर्भाग्य उसके सामने
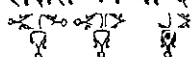
खड़े नहा होत। मनुष्य उसके भरोसे कम से कम हँस तो सकता है। नित्य का रोना खैर [अजगरी का प्रस्थान] यही ८। ऐसा ही है। मुझे तो यही मालूम होता है [ललिता से] आप क्या समझती हैं ? मैंने ठीक कहा या नहा ?

ललिता—[गम्भीर और चिन्ता के स्वर में] आपको समझ लेना मेरे लिये आसान नहा है। आप मुझे समझने देंगे भी नहा। आप समझते हैं कि आपके भीतर पिशाच है मैं देखता हूँ कि आप के भीतर देवता है आप स्वयम् देवता हैं अगर आप मुझे अवसर दे देंगे तो

रघुनाथ—तो क्या होता ?

ललिता—जिस तरह वे [मूर्ति को दिखाकर] इनकी पूजा करती हैं उसी तरह मैं

रघुनाथ—लेकिन इसके लिये प्रेम

ललिता—तो आप क्या समझते हैं कि मै आपको

रघुनाथ—[सिर हिला कर] कह तो नहा सकता मुझे प्रेम ? कोई भी नहीं करेगा कोई भी नहीं। मैं इस लायक नही हूँ। आप की यह उदारता मुझ में क्या है मैं आपको क्या दे सकूँगा। मैं अभागा

ललिता—[नीचे ज़मीन की ओर देखती हुई] यह बात बहस करने की नहीं है यही तो आत्मा का स्वर्ग है विश्वास

की विभूति है जीवन का सङ्गीत है। [रघुनाथ की ओर फेर कर] यह जो है है [मुस्करा उठती है—रघुनाथ पर ऐसा प्रभाव पड़ता है जैसे वह हिल उठता है]

रघुनाथ—मैं सम्भाल नहीं सकूँगा मुझे क्षमा करो देवी

ललिता—मैं कुछ माँगती तो नहीं हूँ

रघुनाथ—मेरे पास है ही क्या ?

ललिता—क्या नहीं है ?

रघुनाथ—कुछ नहीं तुम जानती नहीं। मैं सब ओर से दरिद्र

ललिता—हृदय और आत्मा से धनी जीवन से धनी और फिर यदि दरिद्र भी हो तो मेरे लिये क्या ? विश्वास और त्यागकी दुनियाँ में आकांक्षा देवताके मन्दिर में नशा [रघुनाथ की बाँह पकड़ लेती है—रघुनाथ सिहर उठता है—अशगरी का प्रवेश—अशगरी यह दृश्य देखकर सहम उठती है किन्तु उसी नशे साहस कर आगे बढ़ती है]

अशगरी—[ललिता के कन्धे पर हाथ रख कर] यह क्या ? [ललिता ज़मीन की ओर देखने लगती है रघुनाथ की ओर देखकर] आप कहिये हुज़ूर ?
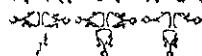
रघुनाथ—[हँसता हुआ] मै नहीं जानता पूछो। [ललिता की ओर सकेत करता है।]

ललिता—मैं भी नही जानती

अश्गरी—तब

रघनाथ— तुम बतलाओ

अश्गरी—मैं ?

रघनाथ— क्या हर्ज है ?

अश्गरी—मैं तो इस जिन्दगी को जीत समझती हूँ मनुष्य के हृदय मे जो है और जो रहेगा—जिसे होना चाहिये वही। खैर मै प्रसन्न हूँ। ईश्वर तुम दोनों को ।

रघुनाथ—[सहसा गम्भीर होकर] समझ नहीं पड़ता यह सब

अश्गरी—फिर वही जिन्दगी का गाना सुना कितना सुन्दर कितना मीठा और कितना नशीला मैं इस लायक नहीं हूँ कि उसका सन्देश देखूं लेकिन [ललिता का प्रस्थान] बड़ी अच्छी लड़की है। अगर यह हो सकता

रघुनाथ—क्या कहा जाय ?

अश्गरी—कोई चिन्ता की बात नहीं है मुझे उम्मीद है कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

हर्ष और विषाद की बिजली खेलने लगती है। सहसा दाँई ओर का दरवाजा खुलता है—पर्दा हटा कर सुखिया का प्रवेश]

ललिता—[झुंझलाकर] क्या है रे ?

सुखिया—चल—बालाजल हुईन ।

ललिता—[क्रोध मे] चल! जैसे मैं इसकी बराबर की हूँ। बोलने का भी शहूर नहीं । कहा है ?

सुखिया—ऊपर छतपर । जल्दी कहली हैं ।

ललिता—कहदे मेरी तबियत ठीक नहीं है। यहीं भेज दे। [सुखिया का प्रस्थान कुर्सी से उठती है। चादर तान कर चारपाई पर पड़ रहती है]

[अश्गरी का प्रवेश—अश्गरी चारपाई के नजदीक जाकर—ललिता के मुँह पर से चादर हटाना चाहती है। ललिता तेज़ी से करवट बदल कर चादर ज़ोर से दबा लेती है]

अश्गरी—वे जा रहे हैं ।

ललिता—तो मै क्या करू ?

अश्गरी—रातका समय है तुम्हारे यहा आये हैं—तुम्हें रोकना चाहिए ।

ललिता—आप क्यो नहीं रोकतीं ?

अश्गरी—किस अधिकार से ?

ललिता—मेरे पास कौन सा अधिकार है ?
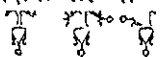
अशगरी तुम्हारा घर है और तुम उन्हें भ्रम

ललिता—आप को शर्म नहीं आती ?

अशगरी—मैंने किया क्या ?

ललिता—मुझे कहना पड़ेगा ?

अशगरी—[गम्भीर होकर] चाहिए न ?

ललिता—आपको मैंने इतना विश्वास किया। मैंने आपके लिए क्या नहीं किया। लेकिन आपने मुझे धोखा

अशगरी—धोखा तुम्हें ! शायद तुम भ्रम में

ललिता—[चादर फेंककर चारपाई पर बैठी हुई] जी नहीं जान बूझ कर, समझ कर आपने मुझे धोखा दिया। मैं सब जानती हूँ। पहले आप यह बतलाइये कि आप हिन्दू हैं या मुसलमान।

अशगरी—हिन्दू ?

ललिता—झूठ है।

अशगरी—[हँस कर] नहीं जो सच है। मैं हृदय से आत्मा से हिन्दू हूँ।

ललिता—और शरीर से ?

अशगरी—मिट्टी के बारे में क्या पूछती हो ? मिट्टी तो सब की एक है

ललिता—इसी को धोखा देना कहते हैं—आप अब भी नहीं मान जाती कि आप मुसलमान हैं। आपने मेरा धर्म लिया।
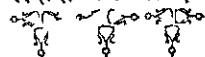
सुखिया मुखिया [सुखिया का प्रवेश । अशगरी की ओर हाथ उठा कर] इ ह ़तन न छून दना य मुसलमान हैं ।

सुखिया—हैं—अरे बाप रे—ईहा भइल । धरम करम ।

ललिता—क्या बक रही है जो कहा समझ गई ? [सुखिया सिर हिला कर हा कहने की मुद्रा प्रकट करती है] जा । [सुखिया का प्रस्थान ।]

अ गरा—ता इसका मतलब कि मुझ यहाँ से चल जाना चाहिय ।

ललिता—अब आप खुद सोचिये । आप शालिग्राम की पूजा करता थी मैं समझता था यह सब दिखावटी

अशगरी—मैं अभी जा रही हूँ

ललिता—अपने शालिग्राम को भी ले जाइये ।

अशगरी—वे भी अपवित्र हो गये हैं क्या ?

ललिता—जरूर

अशगरी—अच्छा तुम्हें कष्ट न हो—मैं जा रही हूँ । इतना मैं कह देना चाहता हूँ कि मैंने जान बूझ कर धोखा नहीं दिया । मै समझती थी तुम्हारी तुम्हारी शिक्षा इतनी हो चुकी है तुम मनुष्य के कर्मों का खयाल ज्यादा करोगी । खैर कोई बात नहीं । [अशगरी का प्रस्थान रघुनाथ का प्रवेश]

रघुनाथ—[ललिता की ओर देखते हुए] श्रीमती जी मनुष्य के हृदय और आत्मा को देखना चाहिये। आप इतनी संकीर्ण हैं। आपने उस देवी को आज आप का नहीं आप के संस्कार का दोष है। खैर अगर आप फिर कभी मिलेंगी उनसे तब जानेंगी कि वे कितने ऊपर उठ चुकी हैं। हमसे आपसे इस दुनिया से। [रघुनाथ जाने के लिये दरवाज़े की ओर मुड़ता है]

ललिता—आप कहाँ जा रहे हैं। [आगे बढ़कर रघुनाथ की बाँह पकड़ कर] आपको तो मैं न जाने दूँगी।

रघुनाथ—मैं आपके योग्य नहीं हूँ। न आप मेरे। हम दोनों में बड़ा अन्तर है। आपको क्या पता मैं किस दृष्टि से उन्हें देखता था। आपने उनका अपमान किया और मुझसे प्रेम? सम्भव नहीं। [रघुनाथ का प्रस्थान। ललिता अवाक खड़ी रहती है। पर्दा गिरता है]

तीसरा अंक

[शहर की एक सडक । दोनो ओर इमारतें । आने जाने वाली सवारियो की धूम । एक आदमी डुग्गी पीट कर नोटिस बाँट रहा है । मातृमंदिर का उद्घाटन । मनीश्वर का अपूर्व त्याग । मातृमन्दिर के मैदान में जनता का विराट समारोह । नेताओं के भाषण । जगह जगह नोटिस लेने वालो की भीड लग जाती है डुग्गी पीटने वाला नोटिस बाटना बंद कर बार बार कहता मातृमन्दिर का उद्घाटन । मुनीश्वर जी का अपूर्व त्याग । मातृमंदिर के मैदान में जनता का विराट समारोह नेताओं का भाषण । इत्यादि । रघुनाथ के साथ कुछ युवको का प्रवेश]

रघुनाथ—देखते हो न दुनिया कैसी अंधी है ?

पहला युवक—[नोटिस बाँटने वाले से] क्या जी कब सभा होगी ?

नोटिस बाटने वाला—पाँच बजे

पहला युवक—कौन कौन नेता आवेंगे ?

नोटिस बाटने वाला—जो आयेगा आयेगा—मैं क्या जानू ? मुझसे जो कहा गया कह रहा हूँ

दूसरा युवक—तो तुम कही हुई बात कह रहे हो !

नोटिस बाटने वाला—[आगे बढ़ते हुए] आप लोग वहीं जाइये ।
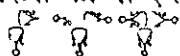
सिरा यु न—मातृ मन्दिर क्या चीज है जी।

ि रा जा ा वा ा—वहा औरतो को खाना कपडा दिया जाता है।

ोा युवा—बस या और कुछ ?

ादिम ा ा ा ा और क्या चाहिये ? खाना कपडा बहुत है। कोई काम न धधा—दिन भर बैठ रहना। कुर्सी भी म ा भी चारपाई, तकिया ताशक—यह सब कम है क्या ?

एक नागरि—[रुककर] क्यो साहब। मातृमन्दिर कोई धर्मशाला है ? मैंने सुना है वहा औरते रक्खी जाती हैं। जो औरत पहले पहुंच जाती है उसका फोटो खींची जाती है। बहुत सा फोटो तो बाजार से बिक रहा है।

युवा—उसकी कीमत क्या होती है ?

नागरिक—आधा बेचने वाला पाता है और आधा उन औरतो के मैनेजर साहब के पास जाता है। लोग कहते हैं वे साधु है—फकीर है— उन्होंने घर बार, मा बाप सब कुछ छोड़ कर यह काम उठाया है यहाँ की बहुत सी वेश्याये अपना काम छोड़ कर वहाँ चली गई हैं। वे जब निकलते हैं लोग हाथ जोड़ जोड़ कर नमस्कार करते हैं वे मुस्कराकर हाथ हिलाते चलते हैं। आज कल तो उनकी धूम हो गई है।

पहला युवक—आप की समझमे वे साधु हैं या नहीं ?
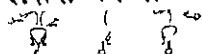
नागरिक—साहब जिसने जन्म भर वेश्या का काम किया है उसका तबियत धर्मशाला में नहीं लगेगी मुझे तो यह सब पसन्द नहीं पड़ता है मैंने खुद एक बुढ़िया को भेजा था—जिसका कोई नहीं था जिसका लड़का अभी पन्द्रह दिन पहले मरा था। लेकिन मैनेजर साहब ने उसे नहीं रखा—कह दिया जगह भर गई है। यह दुनिया का धोखा देना है। और फिर जो जैसा करता है पाता है जैसा भाग्य होता है। भाग्य को कौन बदल सकता है। मैनेजर साहब बजार औरतों तक का भाग्य बदल देना चाहते हैं—हो सकता है बाबू कहो यह भी। यह बड़ा मुश्किल काम है ब्रह्मा का लिखा झूठा आदमी कर देगा जिसके लिलार में वेश्या होना लिखा होगा—वह कहीं भी रहे वही रहेगी।

रघुनाथ—नहीं साहब—ब्रह्मा कहीं नहीं लिखता। आदमी की जिन्दगी इसी दुनिया में बनती और बिगड़ती है।

नागरिक—बाबू साहब आप लोग अंग्रेजी पढ़ कर नास्तिक हो गये हैं। भगवान पर विश्वास नहीं करते सभा करके—व्याख्यान देकर राम राज्य लाना चाहते हैं। यह भी कहीं हो सकता है। साहब। कोई कहता है यह हो कोई कहता है वह हो—लेकिन होता कुछ नहीं। रोज ही सभा होती है। रोज ही व्याख्यान होते हैं कोई कहता है अंग्रेजों को निकाल दो—कोई कहता है—खद्दर पहनो—लेकिन लोग यह नहीं जानते
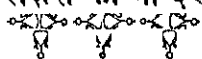
यह साहब भगवान की मर्जी की बात है। सभा करने से क्या फायदा? सत्यनारायण की कथा और दुर्गापाठ होती तो सब दुःख दरिद्र भग जाते। उसकी तो आप लोग दिल्लगी उड़ाते हैं। कहते हैं—घंटी बजाने से क्या होता है—शंख बजाने से क्या होता है। हवन करने से क्या होता है। जो होता है सभा करने से व्याख्यान देने से। मेरा लड़का बीमार था मैंने बहुत दवा की डाक्टर लोग आते थे कल पेच छाती पर लगा कर चले जाते थे। सब ओर से थक कर मैंने भगवान का नाम लेकर रोज सत्य नारायण की कथा कहलाना शुरू कर दी—रोज ब्राह्मणों को खिलाया लड़का भला चङ्गा हो गया। उसका भी अब दिमाग फिर गया है वह भी—उन्हीं साधु बाबा के साथ दिन रात उन औरतों के साथ पड़ा रहता है। हजारों रुपया ले जाकर दे आया रोजगार की ओर उसकी तबियत नहीं लगती। मेरी उमर चौंसठ साल की हो गई और कोई करने वाला नहीं है। मैं क्या करूँ—बस अब भगवान का भरोसा है।

पहला युवक / दूसरा } यह तो बड़ा बुरा है।

तीसरा— / चौथा— } आप उसे रोकते क्यों नहीं?

[रघुनाथ ध्यान से उसकी ओर देखता है]

नागरिक—बाबू जब लड़का सयाना हो गया तब क्या ? मैंने उसे अंग्रेजी पढ़ा कर गलती की काम तो सपड़ता नहीं—खद्दर पहन कर गांधी बाबाकी टोपी लगा कर नेता बनता है। मैं तो मर जाता तो अच्छा होता। यह तो रोज रोज का—बाबू साहब आज पाँच दिन से घर नहीं आया।

रघुनाथ—उसकी—शादी हुई है ?

नागरिक—हुई है सरकार—चार वर्ष हुआ—औरत के पास कभी नहीं जाता। कहता है वह पढ़ी लिखी नहीं है। गाना बजाना नहीं जानती। भले घर की लड़की को गाने बजाने से क्या मतलब इसमें बाप दादों की इज्जत रहेगी बाबू ? घर गिरस्ती का काम लड़की जानती हो तो गा बजा कर क्या करेगी ?

रघुनाथ—आप क्या रोजगार करते हैं।

नागरिक—गल्ले और घी की आढ़त है बाबू। दस हजार का माल स्टेशन पर पड़ा है। मुझे छुट्टी नहीं मिली कि छुड़ाने जाऊं।

पहला युवक—आपका नाम क्या है ?

नागरिक—मुझे तो लोग दौलतराम कहते हैं सरकार।

दूसरा युवक—आप अपने लड़के को विलायत भेज दीजिए।

नागरिक—राम राम ईसाई बनाने के लिये बाबू।
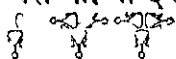
दूसरा युवक—ईसाइ बनाने के लिए नहीं माडर्न बनाने के लिए।

नागरिक—औरत को मोटर में लेकर घूमने के लिये। मेम होने के लिए। बाप दादा की इज्जत गँवाने के लिये। यही न बाबू?

रघुनाथ—सेठ जी दुनिया बदल गई। जो बात आज से दस वर्ष पहले इज्जत की थी अब बेइज्जत की हो गई है।

दौलतराम—[एक ओर हाथ उठा कर रोको नेपथ्य में मोटर रुकने की आवाज़ होती है] कहां जाते हो? मालूम होता है अब घर वालों से कोई रिश्ता नाता नहीं है—क्यों—पछताओगे।

[दौलतराम के लड़के भवानी दयाल का प्रवेश। खद्दर का कुर्ता गांधी टोपी चादर छड़ी। पतला लम्बा शरीर। [illegible] आँखें कुछ धसी हुई। [illegible] हुई मूंछ। अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष]

भवानीदयाल—[मुस्कराकर] मैं आप से सच कहता हूँ—इधर बहुत उलझा था—बड़ा परेशान था

दौलतराम—लेकिन किस लिये बाबू? कोई कमाई कर रहे थे। कहाँ है कमाई दो न? स्टेशन पर माल रात दिन से पड़ा है। सैकड़ों रुपया ज्यादा देना पड़ेगा। तुम पाँच दिन से गायब हो। इधर उधर लोगों में काना फूसी हो रही है। इस वक्त कहाँ जा रहे हो।

भवानीदयाल—स्टेशन

दौलतराम—माल ढुडाने

भवानीदयाल—नहीं—स्पीच करने

दौलतराम—स्पीच करना क्या ? कोई नया रोजगार खोल रहे हो क्या—मुझसे पूछ ना। [illegible]) [कई युवक हँस पड़ते हैं]

भवानीदयाल—[झपकर] बाहर से लोग बाहर से आ रहे हैं उनको लिवाने के लिए

दौलतराम—तो तुम अर्दली का काम करते हो ?

भवानीदयाल—यह अर्दली का काम है ?

दौलतराम—और नहीं तो क्या ? [रघुनाथ से] कहिये बाबू ! यह अर्दली का काम नहीं है ? स्टेशन पर हाज़िर होना। मोटर में बैठाना और फिर ले आना।

रघुनाथ—बड़े बड़े लोगों को ले आना अर्दली का काम नहीं है यह तो इज्जत की बात है।

दौलतराम—बाबू साहब इज्जत रुपये से होती है। इधर उधर दौड़ने से, लेक्चर देने से, और लोगों को मोटर में बैठा कर चलने से नहीं !

दौलतराम—कौन कौन लोग आ रहे हैं साहब !

भवानीदयाल—श्रीमती ललिता देवी इस गाड़ी से आ रही हैं। उनका व्याख्यान होगा

रघुनाथ—कौन हैं य ?
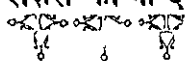
भवानीदयाल—आप इन्ह नहा जानते ? इ होन दस हजार मातृ म दिर के लिय दिया है। उसका उद्घाटन वे ही करेंगा।

रघुनाथ—और काई ?

भवानीदयाल– वहाँ जान पर शायद और काई मिल जाय। रघुनाथ बाबू

रघुनाथ—रघुनाथ बाबू कौन ?

भवानीदयाल—रामलाल वकील के लड़के जिनका बहुत सा धन म दिर म लगा है—सक्रटरी साहब न कहा है शायद वे भी आय ?

पहला युवक—वह किस लिये आयग साहब !

भवानीदयाल—शायद यह दखने क लिये कि उनका धन कैस अच्छे काम में——उनका मानपत्र दन का भी प्रब ध हमारी ओर से हुआ है। यदि वे आयेंगे तो

रघुनाथ—और यदि नहीं आय ?

भवानीदयाल—तो उनके लिये ध यवाद का प्रस्ताव पास कराया जायगा [कलाईकी घड़ी देखकर] अब मुझे देर हो रही है। [दौलतराम से] मैं परसों घर आऊगा। [प्रस्थान]

दौलतराम – परसों हूँ—अच्छा दखूगा कैस शौक चलता है।

[दौलतराम का प्रस्थान]

रघुनाथ—अब क्या होना चाहिये ?

पहला युवक—सभा में जाने के पहले एक बार मातृ मन्दिर का निरीक्षण करना चाहिये।

रघुनाथ—भाइ मेरी आत्मा तो इसके लिये गवाही नहीं देती। मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा। दुनियाँ भर की अच्छी बुरी औरतें

दूसरा युवक—तो तुम्हें अपने पर विश्वास नही है। वहाँ की हालत पहले देख लो तो अच्छी होगा। उसी के अनुसार कुछ कहा भी जा सकता है।

पहला युवक—[रघुनाथ का हाथ पकड कर आगे बढ़ने के लिये संकेत करता है]

रघुनाथ—अच्छी बात है चलो—लेकिन मुझे तो इस आश्रम पंथ और व्याख्यान पंथ से भय मालूम होता है। समझदार, चिन्ता शील मनुष्य इससे अलग रह जाते हैं। और वे लोग इसमें भाग लेते हैं जो कहते बहुत हैं किन्तु करते कुछ नहीं। उनका सिद्धान्त और आदर्श शब्दों और वाक्यों का है सत्य का नहीं। वे व्याख्यान तैयार करते हैं, रटते हैं, और बोलते हैं अपने हृदय से नहीं पूछते वह क्या कह रहा है ? सिद्धान्त और आदर्श की जहाँ बात पडती है—वहाँ एक ही सांस में—बुद्ध, ईसा, कन्फूसियस सुकरात और टालसटाय गाँधी या लेनिन का

नाम ले जाते हैं यह नहीं देखते उनकी जिन्दगी क्या थी, और इनकी जिन्दगी क्या है ? मुनीश्वर आज सुधारक बना है। और कल खैर यही दुनियाँ की गति है।

पहला—इसीलिए तुम्हारी यह हालत है।

रघुनाथ—कैसी हालत ?

पहला—जो तुम्हारी इस वक्त है। जिसने तुम्हे धोखा दिया है। तुम्हारी सभी सम्पत्ति चालबाजी से हड़प ली। तुम्हारे साथ क्या क्या न किया ? फिर पर भी तुम उसे क्षमा करने पर तैयार हो।

रघुनाथ—आखिरकार मैं कर ही क्या सकता हूँ ?

पहला—तुम ! यह दुनिया उलट सकते हो, इसकी नीव हिला सकते हो। यदि चाहो उसमे कुछ प्रयत्न करो। देवता बनो राक्षस बनो, तपस्वी बनो, हत्यारा बनो। चुपचाप हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने से कुछ नहीं होगा।

रघुनाथ—मैंने देख लिया मै कुछ नहीं कर सकता। वह विजयी है पिता जी बराबर उससे पीछा छुड़ाते रहे कि तु अन्त म उसकी इच्छा पूरी हुई।—वह विजयी है।

दूसरा—A if he is your hero

रघुनाथ—I think he is दुनियाँ उसके लिये है और वह दुनियाँ के लिए।

पहला—लेकिन आपको मैदान इस तरह नहीं छोड़ना चाहिये। चलने में क्या हानि है ? आखिरकार सभा में तो चलना ही है।

रघुनाथ—चलो। मुझे चलने में कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन [सब जाते हैं] [कुछ नागरिकों का प्रवेश]

पहला—गाँधी बाबा आइल बाड़ें। चल के चाहीं।

दूसरा—कहाँ गाँधी बाबा आयल बाड़े।

तीसरा—सभा में—लकचर होई

चौथा—मैं तो देखले हों

पहला—फेरु देख लव

चौथा—मो नहीं जाब

पहला—काहे का गईल जाय। शहर भर क रण्डी आसरम में चलि गइलिन। बाबू लोग खद्दर पहिरि के गाँधी टोपी पहिरि के का कहल जाय। जमाना फिरि गईल। कुल बात पुरानी टूटि गईल—न पूजा न धरम—साफ कपड़ा चाही—दिल साफ रहे वा न रहे। बाप जियत रहे—मोछ मुड़ाय जाय। साड़ी पहिन के चले त महरारुन में पता न चले। [नागरिकों का प्रस्थान। कालेज के कुछ लड़कों का प्रवेश]

पहला—अरे यार—परिस्तान है। जन्नत का सारा सामान जमीन पर उतर आया है। मैं एक दिन गया था। जिधर

देखिये कहीं बाल खुले हुए, कहीं बँधे हुए, कहीं लटकते हुए। बस देखते ही बनता

दूसरा—छिः क्या बक रहे हो। पढ लिख कर गधों की बातें। उसके ऊँचे आदर्श को देखो।

पहला—मैं खूब देख रहा हूँ। एक बिजली की चमक सम्हाली जा सकती है—आँखें किसी तरह सम्हाल लेती हैं लेकिन अगर एक साथ एक हजार बिजली चमक उठें तो तुम्हारे ऐसे आदर्शवादी जीवन भर के लिये अंधे हो जायँ।

तीसरा—यह मुनीश्वर भी बड़ा विलक्षण जीव निकला। आज से चार वर्ष पहले क्या था अब क्या हो गया। मुझे याद पड़ता है आज से चार वर्ष पहले कांग्रेस आफिस में काम करता था। रुपया लाने बैंक गया। आफिस में आकर रोने लगा कि कहीं नोटों का लिफाफा गिर गया। खैरियत यह हुई कि उस समय रमेशचन्द्र जी वहीं थे। उन्होंने उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में शैतानी नाच रही थी। उन्होंने सारा मतलब समझ लिया। उसी समय उन्होंने उसे ठोकर मार कर निकाल दिया और कहा कि यदि रुपया नहीं मिलेगा तो बड़े घर की हवा खानी पड़ेगी। खैर साहब दूसरे दिन सवेरे चालाकी से रुपया दफ्तर में फेंक गया। वही मुनीश्वर आज सुधारक बना है।

दूसरा—तो इससे क्या। हत्यारा अगर वाल्मीकि हो सकता है तो चोर भी सुधारक हो सकता है।

तीसरा—जी हाँ—मैं भी विकास में विश्वास रखता हूँ—किंतु इस तरह का विकास जिस रास्ते पर घी की काई जमी हुई है—बड़ा भयंकर है। कोई कितना सम्हाल कर चलेगा। मनुष्य की प्रकृति भी कोई चीज़ है।

दूसरा—That is always moral

तीसरा—No sir that is seldom moral It requires thrashing Have nt you read Hobbes

दूसरा—I have read Rousseau and Tolstoy too

तीसरा—They are sentimental moralists with very little life and its subtlities

दूसरा—आज का संसार रूसो और टालस्टाय की विभूति है।

तीसरा—आज की क्रांति भी ढोंग थी

दूसरा—खैर! मेरा आपके साथ समझौता नहीं हो सकता।

तीसरा—लेकिन मैं चाहता भी नहीं। आप भीतर की आँखों से बरछी की नोक देखना चाहते हैं लेकिन तब तक नहीं देख पाते जब तक कि वह आपके कलेजे में नहीं गड़ती। [दूसरे का प्रस्थान]

तीसरा—[पहले से] आप नहीं जानते—मुनीश्वर के आश्रम का यह प्रोपैगैण्डा करता फिरता है। कालज क कई लड़के वहाँ के मेम्बर हा गये हैं। हास्टल्स में इस समय सिवा आश्रमकी चर्चा के काई बात नहीं है। यार लोग शाम को घूमन निकलत हैं तो आश्रम की आर घूमघाम कर चल पडत हैं। लौटन पर घंटे भर तक उसी बात को लकर कुर्सी तोडा करते हैं। सिनमा और थियेटर का शौक अब कुछ कम हुआ जा रहा है। यह सब इसी की करतूत है। आश्रम की बात सबसे पहले इसी ने शुरू की।

पहला—लेकिन बनता तो है भाई आदर्शवादी। चार बजे सवेरे उठ जाता है, और नियम से दस बजे सो जाता है। हम लोगा की तरह दो बजे तक करवटें नहीं बदलता रहता और न एक पहर दिन तक सोता रहता है।

तीसरा—सवेरे सोना और उठना सबके लिये गुण नहीं है। पशु भी प्रकृति के अनुसार सोते और उठते हैं मै मनुष्य की आत्माकी बात मानता हूँ । नियम कुछ ऊँचे भी उठात है। लकिन बहुतो के लिये ता वे बोझ हा जाते हैं। बहुत सा भाग जावन का मशीन या पुतलीघर हो जाता है। कायला झोकते जाओ, तेल डालते जाओ, धूआँ निकलता रहेगा। मनुष्य कुछ दूसरी वस्तु है। वह क्या है आजकी दुनिया नहीं समझ रही है। मनुष्य से ऊँची जगह कुर्सी को मिल रही है। प्रोफेसर लोगों के

यहाँ जाइये—घंटे भर बाहर बैठे रहिये। कभी तो चपरासी ने कह दिया सो रहे हैं। कभी कह दिया स्नान कर रहे हैं। कभी कह दिया तबियत खराब है। बड़े भाग्य से अगर भेंट हो गई तो सवाल हुआ "कहिये साहब क्या बात है। मेरे पास समय नहीं है। जरा जल्दी कीजिये।" यही sham humanity सभी जगह देखने को मिलती है। तुलसी जयंती के अवसर पर सभापतित्व के लिए एक प्रोफेसर साहब के यहाँ गया। आप पानपाव सुपारी मुँह में भरे थे—साफ बोली भी मुँह से नहीं निकलती थी कहने लगे [मुंह बनाकर] हूँ मैं क्या जानूँ। तुलसीदास के बारे में यह काम विद्वानों का है। मुझे तो क्षमा कीजिए। मैं कहता ही रह गया पर छोड़ कर हाँ नहीं हुआ। मुझे भी कुछ रंज मालूम हुआ—मैंने उनसे पूछा जब आप सूरदास पर या बिहारी पर क़लम उठाते हैं तो हम लोग समझते हैं कि तुलसीदास पर आप कुछ जरूर कह सकते हैं।

दूसरा—तब उन्होंने क्या कहा?

तीसरा—कहते क्या चुप हो गए। इस बात का जवाब ही क्या हो सकता था। हिंदी में लिख कर रुपया कमाने के लिए इस तरह के लोग मैदान में तो कूद पड़ते हैं—लेकिन जब कहीं साहित्यिक सार्वजनिक कार्य में भाग लेना होता है—तब बस सब हवा—इन लोगों में न तो आत्मविश्वास है न सेवा का भाव।
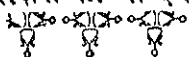
पहला—आदर्श और जीवन में अन्तर है।

तीसरा—यह फजूल की बातें हैं। आदर्श और जीवन में कोई विशेष अन्तर नहीं और फिर जब ऐसे लोग एक दो नहीं अनेक हैं जिन्होंने अपने जीवन में आदर्श की प्रतिपत्ति सफलता पूर्वक करके दिखलायी है। तब इस द्वन्द्व पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस जमाने में सम्मान मुर्दे का सजा रहा है—डिग्री से, पद से, धन और सम्मान से। ये मुर्दे कानफ्रेंस करते हैं—सभा—और सम्मेलन करते हैं मनुष्यता का जो सम्बन्ध है—मनुष्य में जो चिरन्तन है उसकी ओर इनकी नजर नहीं उठती। महात्मा गांधी में और क्या है? सिवा इसके कि वे मनुष्यता का सम्बन्ध समझते हैं। सारे संसार का सुख और दुख उनका सुख और दुख है। इसी लिये वे बड़े हैं—इसी लिये वे संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं—इसी लिए वे महात्मा हैं—। [दूसरे से] तुमने Worlds Tomorrow का वह अङ्क देखा था जो केवल गांधी जी के बारे में निकला था।

दूसरा—नहीं?

तीसरा—वाह क्या पूछना है? संसार के प्रसिद्ध लेखकों ने गाँधी के बारे में अपने विचार व्यक्त किये थे। किसी ने उन्हें इस युग का सब से ऊँचा मनुष्य माना था—तो किसी ने कहा था कि ईसा के बाद उस कोटि के ये पहले महापुरुष हैं। यह सम्मान

उनका नहीं—भारत का सम्मान है इसका हम सब को गर्व होना चाहिये।

दूसरा—लेकिन किसको इसका गर्व नहीं है?

तीसरा—तुम नहीं जानते। तुम्हें जो महाशय हिन्दी पढ़ाते हैं और कभी हँसते ही नहीं—समझे।

दूसरा—कौन? [कुछ सोच कर] हाँ समझ गया—क्या हुआ—?

तीसरा—समझ गए? तुमने कभी उन्हें हँसते देखा है?—मुझे तो भाई उस आदमी पर दया आती है। पढ़ा लिखा तो उसने कुछ नहीं—समझता है कि बस मैं ही जो कुछ हूँ हिन्दी साहित्य में हूँ। थोड़े से चाटुकार कहते हैं बड़ा गम्भीर गद्य लिखता है। मुझे तो एक वाक्य भी नहीं मिला जो कहीं न कहीं का अनुवाद न हो या तो मैं उससे केवल इसी बात के लिये घृणा कर सकता हूँ कि बिना कुछ समझे बूझे वह उन नये लेखकों और कवियों का विरोध करता है—जिन्होंने विश्व-साहित्य का अध्ययन किया है—उसका रुख पहचाना है—जिनकी रचनायें इस बात की आशा दिलाती हैं कि किसी न किसी दिन वे भी विश्व साहित्य में रखी जायेंगी। लेकिन सबसे अधिक घृणा मैं उससे इसलिये करता हूँ कि वह बड़ा भारी गाँधी द्रोही है। एक बार प० यज्ञनाथ म्युनिसिपल चुनाव में खड़े हुए थे। हम लोग
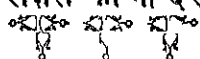
इस आशा स कि पढ़ा लिखा आदमी है—योग्य यक्ति का वोट देगा—उसक पास प्रार्थना करन के लिए गये। उसने चट वह दिया मै गाधीवाद और खद्दरवाद का घृणा करता हूँ। वह आदमी ऐसा कहे जा बुड्ढ हान पर चार अगुल चौड़े काल किनारे का धाता पहन कर कालज म लक्चर दन जाता है—जिसकी रुचि ऐसा गुण्डो की सी हैं।

पहला—हाँ ?

दूसरा—तुमन कुछ नहीं कहा।

तीसरा—मै कब छोड़न वाला। मैंन कह दिया आपको ठीक दिखलाई नहीं पड़ता। गाँधीवाद स घृणा ता उनस सबस बड़े प्रतिद्व दी लाड रीडिंग नहीं करत। ससार क बड़ बड़े नखका और पत्रा न उसवाद की पूजा की है। आप का यह कहना शाभा नहीं देता। आप भारतीय हैं।

पहला—लकिन चाटुकार और गुलाम भा ता है। गुलाम भारतीय शायद ससार में सब से नीची कोटि जीव है—सब स नीची काटिका। वह लात मारन पर दाँत दिखलाता है—पूँछ हिलाता है।

तीसरा—[पहले का कन्धा पकड़ कर ज़ोर से हिला देता है] वाह, वाह तुम भी समझने लगे ?
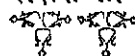
पहला—तुम से ज्यादा। तुम्हारा शब्दों का प्रेम है और मेरा कर्मों का। बात करने में तो जैसे तुम भगतसिंह से भी चार क़दम आगे बढ जाते हो—लेकिन काम में—क्या—कांग्रेस कमेटी में स्वयं सेवक बनना था तो चार घंटे के लिए खद्दर को धन्य कर दिया [उसकी धोती पकड़ कर] और यह क्या है?

तीसरा—अहमदाबाद मिल

पहला—जी नहीं—मैनचेस्टर और यदि अहमदाबाद भी तो क्या—यह बेईमानी क्यों?—तुम विदेशी पहनो कोई बात नहीं—लेकिन यह आत्मवञ्चना किस काम की? गाँधी का महत्व शब्दों के बाहर तुम भी नहीं समझते। जिसे खद्दर में विश्वास नहीं हुआ वह गाँधी में विश्वास क्या करेगा? खद्दर खद्दर खद्दर हमारी सारी बीमारियों की एक ही दवा एक ही महौषधि नौकर शाही घुटनों के बल आ गिरेगी। साम्राज्यवाद विरोधी परिषद् में संसार का एक नकशा टँगा था जिसमें दिखलाया गया था कि भारत की गुलामी एशिया और अफ्रीका या सारे संसार की गुलामी की जड़ है। जिस दिन देश खद्दर स्वीकार कर लेगा, नौकरशाही की नींव हिल उठेगी।

तीसरा—तो नौकर शाही का कोई भी दोष नहीं है?

पहला—कोई भी नहीं। सारा दोष तुम्हारा है। तुम कहते तो बहुत हो लेकिन करते कुछ भी नहीं—आज की दुनियाँ न शब्दों
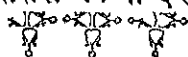
का बड़ा दुरुपयोग किया है। इसी लिए अब वह शब्दों पर विश्वास भी नहीं करती। अब तो चुप चाप जिससे बन पड़े करता चले। कहना, लिखना और व्याख्यान देना फजूल है जो कुछ कहना हो तुम्हारे कर्त्तव्य कहें। तुम कुछ न कहो। कोरे शब्दों में शक्ति का अपव्यय होता है—मिलता कुछ भी नहीं।

तीसरा—[पहले का हाथ पकड़ कर] बहादुर हो

दूसरा—तपस्वी हो—

पहला—जी नहीं—ऐसा कुछ भीनहीं। मुझे फजल का कहना नहीं आता।

दूसरा—खैर— यह तो काम है जगदीश। कोई कहता है—कोई करता है।

जगदीश—नहीं घनश्याम—यह काम नहीं है। कहने वाले को करना भी चाहिए।

तीसरा—तो तुम कहते क्या हो ?

जगदीश—मैं ?

तीसरा—हाँ

जगदीश—मैं कुछ नहीं कहता—महेश—मुझे जो कहना होता है—मे कर बैठता हूँ।

महेश—मेरे लिये क्या कहते हो ?

जगदीश—तुम्हारे लिये ? मेरा कहा तुम मानोगे ?

महेश—[हाथ बढ़ाकर] हाथ मिलाओ—जो कहो—वही

जगदीश—[उसका हाथ पकड़ कर] अच्छी बात तो खद्दर पहनो।

महेश—इस महीने से घर से रुपया आजाय।

जगदीश—वह नहीं होगा। रुपया आवेगा—पान वाले का दूध वाले का, मिठाई वाले का, शर्बत वाले का, दुनिया भर के बिल पे करने में खतम हो जायगा। तुम आज ही पहनो

महेश—किस तरह हो सकता है—मेरे पास रुपया नहीं है।

जगदीश—मेरे कपड़े पहनो। अपने लिये एक कुर्त्ता और एक धोती यह रख कर अपने बाकी दो कुर्त्ते, दो बंडी, और दो धोती मैं तुम्हें दे सकता हूँ। तुम्हें पहनना होगा।

महेश—अच्छी बात है शाम की मीटिंग से लौट कर।

जगदीश—[उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए] अभी चलो होस्टल—पहन कर मीटिंग में आना। [एक ओर हाथ उठा कर] इक्केवाले—इक्केवाले रोको। चलो इक्का खड़ा हो गया।

महेश—रहने दो शाम को

घनश्याम—अब क्या रहने दो—देह छिल जायगी ?

महेश—अजी ये बड़ा मोटा खद्दर पहनते हैं। बोझ हो जाता होगा।

जगदीश—मेरा यह सिद्धांत है कि पतले कपड़े तुम्हारे ऐसे शौकीनों को छोड़ दूँ और मोटा मैं पहनूँ। आखिरकार अगर कोई पहनेगा नहीं तो मोटा खद्दर क्या होगा यह हो नहीं सकता कि सभी खद्दर पहले तो सभी लोग पतला खद्दर खोजते हैं न मिलने पर मिल से संतोष करते हैं। खद्दर और शौक दोनों साथ साथ नहीं चल सकते। खद्दर के साथ सादगी को भी रहना होगा। गाँधी जी का यही सिद्धांत है।

महेश—होस्टल चलने में तो अब देर होगी।

जगदीश कोई बात नहीं—तुम्हारा खद्दर पहनना उसकी मीटिंग में जाने से कहीं बढ़ कर है।

महेश—सचमुच [मुस्कराने लगता है] जगदीश खद्दर में एक तरह की संकीर्णता मालूम होती है। संसार के सभी मनुष्य एक हैं—सब में वही आत्मा और सब के ऊपर वही ईश्वर है। अंग्रेजों से वैमनस्य—एक प्रकारकी घृणा यह अच्छी बात है ?

जगदीश—महेश बाबू जरा और ऊँचे उठो और तब देखोगे। मनुष्य की आत्मा और तुम्हारा ईश्वर भी मशीनों में पीसा जा रहा है। संसार का धन थोड़े से पूँजीपतियों के हाथ में चला जा रहा है और दूसरी ओर दुनिया के तीन चौथाई आदमी दिन भर मरते हैं शाम को रोटी के लिये। खद्दर का अंतिम
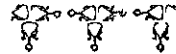
परिणाम सारे ससार की मुक्ति है। करोड़ो भूखे मनुष्यो के कल्याण का सदेश लेकर यह आग बढ़ रहा है। किसी न किसी दिन दुनिया इसे सुनेगी। यह युद्ध अंग्रेजो के विरुद्ध नहीं—सारे ससार के अन्याय अत्याचार और विषमता के विरुद्ध है। तुम पहले मनुष्य बनो और तब मनुष्यता का सन्देश सुनाओ। इस युग मे देश की इस दरिद्रता और गुलामी म जब तक तुम खद्दर और सादगी स्वीकार नहीं करते तब तक तुम्हारी मनुष्यता पूरी नहीं हो सकती। दुनियाँ आज नहीं बनी है। पहले भी मनुष्य थे—लेकिन जितना अत्याचार और जितना उत्पीड़न आज है - उतना कभी नहीं था।

महेश—लेकिन यह तो निश्चय है—ससार का विकास हो रहा है।

जगदीश—हाँ लेकिन मनुष्य की भौतिक शक्तियों का—आध्यात्मिक शक्तियो का नही। दया का, प्रेम का, उदारता का और सत्य का नही। मनुष्य की भीतरी शक्तियो का विकास नहीं हो रहा है। तुम हवाई जहाज पर चढते हो टेलीफोन का मजा उठाते हो—लेकिन साथ ही साथ होटलों म नाइट इंगेजमेंट भी खोजते हो—यही तुम्हारा विकास है। और यदि समझो तो यही तुम्हारा पतन है। तुम युद्ध करते हो शारीरिक बल या हृदय के साहस से नहीं—जहरीली गैस से।
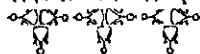
महेश—मैं क्या करता हूँ जी

जगदीश—तुम नही—जिस तुम सभ्य मनुष्य कहते हो, जो तुम्हारा आदर्श है जिसका अनुगमन करना तुम कर्त्तव्य समझत हो। जो नाचता भी है, गाता भी है और गरीबो का ठोकर भी मारता है—जिसके प्रेम और त्याग का मूल्य भी रुपये मे आँका जाता है—जा सैकड़ों स्त्रियो का चुम्बन करता है चुम्बन रहस्य पर प्रकाश डालन के लिये, जैसे चुम्बन बिल्कुल शारीरिक व्यापार है, जैस इसका सम्ब ध आत्मा और हृदय से नहीं है। जिसकी सारी जानकारी यहीं तक है कि आत्मा ऐसी जा वस्तु मनुष्य मे है उसकी ओर वह नजर न उठावे—जा त्याग, तपस्या और पवित्रता का हँसा उडाता है।

महेश—अ धविश्वास का जमाना तो अब चला गया—अब तो विवेक

जगदीश—विश्वास का भा चला गया—अब तो तर्क

घनश्याम—तक से ही तो सब बात साबित होती है

जगदीश—हाँ-ईश्वर नहीं है—दया और सहानुभूति कम जोरियाँ है—और इस तरह की सैकड़ो बातें तर्क से साबित की जाती हैं—मनष्य मे जो पशु है उसका सबसे बड़ा भोजन तर्क के द्वारा मिलता है।

घनश्याम—तुम प्राचीनता के पुजारी हो—जो कुछ भी पुराना है अच्छा है, नई बात सभी बुरी हैं।

जगदीश—क्या नया है और क्या पुराना है—घनश्याम जी, न तो यह दुनियाँ नइ है न मनुष्य नया है। जो कुछ है सभी पुराना है। शरीर नही बदलने वाला है—कपड़ा जो चाहो पहनो—अन्तर नाम और रूप का है। सत्य जो है सदैव है।

महेश—अब तक तुम छिपे थ

जगदीश—प्रकट हो कर ही क्या करता

महेश—जिस दिन तुम प्रगट होते—उसी दिन से मैं तो खद्दर पहन लगता !

जगदीश—आजही से पहनो अभी से होश हा

महेश—चलो अपने कपड़े द दो—

जगदीश—सच कहते हो—?

महेश—हां जी

जगदीश—[महेश का हाथ पकड़ कर] चलो

[जगदीश महेश और घनश्याम का प्रस्थान]

[पर्दा उठता है। मातृमन्दिर का भवन। सामने आगे को निकला हुआ चबूतरा। उसके नीचे सपाट मैदान। हरी घास चबूतरे से लेकर कुछ दूर मैदान तक, ऊपर शामियाना चबूतरे पर शामियाने के नीचे एकबड़ा गोलमेज़ और कुर्सीयों की कई क़तारे। नीचे भी कई क़तारों

में कुर्सीया। सामने से प्रवेश करने का रास्ता नीचे की कुर्सीया के बीच से होता हुआ चबूतरे तक। मुनीश्वर प्रबन्ध की व्यवस्था इधर उधर घूम कर, कर रहा है। खद्दर का कुर्ता वेस्टकोट एड़ी तक धोती और चप्पल। वेस्टकोट की जेब में फाउन्टेनपेन—क्लिप बाहर की ओर सुनहली चमकती हुई।]

मुनीश्वर—[इशारे से कई एक स्वयंसेवकों को बुलाता है। किसी के कान में कुछ कहता है। किसी को एक कागज देकर ऊपर की ओर हाथ फेर कर उँगली दिखाता है] हां—उस कोने वाले कमरे में—आफिस रूम के बगल में? [एक स्वयंसेवक का हाथ पकड़ कर] जिसके पास टिकट न हो न आने देना। सब से कह दो। समझे। लेकिन कोई कड़ा शब्द न कहना। जिसके पास टिकट न हो [हाथ जोड़ कर] क्षमा कीजिए आज्ञा नहीं है। बस इससे अधिक कुछ नहीं। सार्वजनिक काम है। इसका ख्याल करना बदनाम करने वाले लोग बहुत हैं। मैंने इतना प्रयत्न किया—घर वालों का भी मोह छोड़ दिया। लेकिन समझते हैं इसमें मेरा स्वार्थ है खैर जैसी ईश्वर की इच्छा। सावधान रहना। मैं ऊपर जा रहा हूँ कार्यक्रम तैयार करने। [एक प्रेस रिपोर्टर का प्रवेश]

रिपोर्टर—[अपना कार्ड देता है]

मुनीश्वर—[कार्ड देकर] आप बड़ी कृपा हुई

रिपोर्टर—आपके मन्दिर की बड़ी धूम है—

मुनीश्वर—सब आप लोगों की कृपा है [बाईं ओर हाथ उठा कर] पहली क़तार आप लोगों के लिये है। अभी यहाँ मेज़ नहीं रखी गई। क्षमा कीजिएगा अभी प्रबन्ध करा देता हूँ। जेब से घड़ी निकाल कर अभी पूरे घण्टे भर की देर है। तब तक आप प्रार्थना भवन में बैठें। [एक स्वयं सेवक] आप को लिवा जाओ [रिपोर्टर से] और कोई जरूरत ?

रिपोर्टर—जी नहीं

मुनीश्वर—मन्दिर की व्यवस्था के बारे में भी यदि कुछ जानना चाहें तो सभा के बाद

रिपोर्टर—आप अपनी स्पीच में नहीं कहेंगे ?

मुनीश्वर—क्यों नहीं कुछ कहूँगा। ख़ैर आप चलिये बैठिये। [मुनीश्वर का प्रस्थान एक ओर से अपने साथियों के साथ रघुनाथ का और दूसरी ओर से भजनानन्द के साथ ललिता का प्रवेश। दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं। क्षण भर जैसे दोनों सिहर उठते हैं रघुनाथ लौट पड़ता है ललिता उसकी ओर देखती रह जाती है रघुनाथ के साथी विस्मित होकर एक दूसरे से धीरे धीरे कुछ कहने लगते हैं—कोई उसकी ओर हाथ उठाता है तो कोई सिर हिलाता है।]

भजनानन्द—चलिये ऊपर

ललिता—थोड़ा ठहर बड़ी थकावट [वहां एक कुर्सी खींच कर बैठ जाती है। कुर्सी की बांह पर केहुनी टेक कर
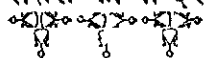
हथेली पर सिर रख लेता है और ऊपर शामियाने की ओर देखने लगती है]

भवानी दयाल—[कुछ देर चुप चाप खड़ा रह कर] ऊपर चलना अच्छा होता—फिर तो नीचे आना होगा।

ललिता—नीचे क्यों आना होगा ?

भवानी दयाल—सभा के अवसर पर यहां बैठने के लिये।

ललिता—मेरी क्या जरूरत है ?

भवानी याल—[कुछ आश्चर्य से उसकी ओर देखता है—रघुनाथ के साथी सभी धीरे २ चले जाते हैं]

ललिता—[गम्भीर होकर] म त्री जी ऊपर हैं ?

भवानी दयाल—जी हाँ

ललिता—चलिये फिर इसी शाम की गाड़ी से लौट जाना चाहती हूँ।

भवानी दयाल—तब तक तो सभा होती रहेगी

ललिता—मुझे सभा से क्या मतलब साहब। देखने आई थी। आप लोग बड़ा अच्छा कर रहे हैं—धन्य हैं। स्त्री जीवन के कष्ट और दु ख आफ

भवानी दयाल—सब आप लोगों की कृपा है। [मुनीश्वर का प्रवेश]

मुनीश्वर—[ललिता को नमस्कार कर भवानीदयाल से] इन्हें यहीं बैठा दिया। आप की समझ—गाड़ी की थकावट कुछ देर आराम कर लिये होतीं

भवानी—क्या जबरदस्ती ? बैठ गईं

मुनीश्वर—हाँ ऐसे मौके पर जबरदस्ती की जाती है। [ललिता से] उठिये चलिये [उसकी बांह पकड़ कर] देखिये चलती हैं या नहीं। [ललिता उठ कर खड़ी होती है]

ललिता—मन्त्री जी मैंने आप का आश्रम देख लिया शाम को जाऊँगी

मुनीश्वर—खैर देखा जायगा—अभी आपने आश्रम ही नहीं देखा—उसका शरीर देखा है—उसके भीतर जो आत्मा है

ललिता—वह देखने की चीज नहीं है—लेकिन खैर चलिये यदि सम्भव हो सके—[ललिता—मुनीश्वर—और भवानी दयाल का प्रस्थान।]

[ऊपर का बड़ा कमरा। बीच में मेज़ चारों ओर कुर्सियां मेजपर कई फाइल और अन्य आवश्यक लिखने पढ़ने का सामान। बाईं ओर दूसरे कमरे में जाने का दरवाजा दरवाजे पर खद्दर का रंगीनपर्दा। मुनीश्वर ललिता और भवानी दयाल का प्रवेश]

मुनीश्वर—यही मेरा आफिस रूम

ललिता—अच्छा तो है
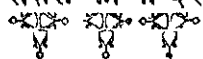
मुनीश्वर—हां इस स्थितिमे जो हो सका है। [भवानीदयाल से] आप नीचे चलिये—जरूरी काम—[भवानीदयाल का अनमना हो कर प्रस्थान—ललिता से] उस कमरे मे आप थोड़ी देर आराम कर ले। जल पान का सामान भेज रहा हूं। [मुनीश्वर का प्रस्थान ललिता एक बार शून्य दृष्टि से कमरे में चारो ओर देखती है फिर पर्दा हटा कर दूसरे कमरे में चली जाती है। थोड़ी देर बाद मुनीश्वर का प्रवेश। मुनीश्वर कुर्सी पर बैठकर एक स्लिप खींचकर कुछ लिखने लगता है। एक युवती का प्रवेश]

युवती—मैं तो यहाँ नहीं रह सकती

मुनीश्वर—[चौक कर] क्या ?

युवती दस बजे सोने और चार बजे घन्टी बज जाने पर उठ जाने की मेरी आदत नही है। मैं तो देर तक जागती रहती हूँ सवेरे नींद नहीं खुलती

मुनीश्वर—यह आश्रम है आश्रम में आदत बनानी पड़ेगी।

युवती—जब नहीं तब जो आता है उसे आप हमारे कमरे मे भेज दिया करते हैं—जैसे मैं कोई नुमाइश की चीज हूँ। भवानी दयाल जी के मारे तो और तबियत हैरान है। जब नहा तब किसी न किसी बहाने से सिर पर सवार हो जाते हैं—और किसी कमरे मे तो नहीं जाते।

मुनीश्वर—तुम उन पर स देह करती हो उन पर
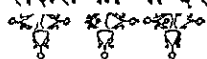
युवती—मैं उनसे हैरान हो गई हूँ

मुनीश्वर—खैर चलो देखा जायगा।

युवती—नहीं आप उन्हें मना कर दें। नहीं तो मैं नही रहूगी।

मुनीश्वर—[मुस्कराकर] अच्छी बात मैं उन्हें मना कर दूगा—लेकिन उनके व्यवहार की शिकायत किसी दूसरे से तो नही करोगी न।

युवती—इस शर्त पर

मुनीश्वर—हां सम्भव है तुम्हारी तरह किसी और का छोटी सी बातपर सन्देह हो

युवती—मुझे यह शर्त मंजूर है लेकिन आप उन्हें मना कर दीजिए और किसी दूसरे को मेरे कमरे में न आने दिया कीजिये। [प्रस्थान] [रघुनाथ का प्रवेश]

मुनीश्वर [उठकर आगे बढ़ते हुए] वाह भाई ! मुझे याद तो किया।

रघुनाथ—हाँ एक बार इसकी जरूरत थी।

मुनीश्वर—एक बार—फिर नहीं—रघुनाथ ! मैंने जान बूझ कर तुम्हारी कोई हानि नहीं की।

रघुनाथ—हो सकता है—मैं इसका निपटारा करने नहीं आया हूँ [मेज़ की दूसरी ओर दरवाजे की ओर पीठकर कुर्सी पर बैठता है—
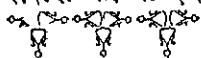
मुनीश्वर खड़ा खड़ा उसकी ओर देखा करता है] बैठिये मैं देर तक यहां ठहर नहीं सकता

मुनीश्वर – तुम्हारी मर्जी किसी दिन समझोगे कि मैंने तुम्हारा कोई अपकार नहीं किया

रघुनाथ—मैं आज ही समझ रहा हूँ मैंने आपका अपकार खुद किया। मैं अपनी रक्षा नहीं कर सका मेरा दोष था। आपका कोई दोष नहीं

मुनीश्वर—वास्तव मे ?

रघुनाथ—हाँ वास्तव मे। एक के नाश पर ही दूसरे का जीवन है। यह प्रकृति का नियम है। इसमें आपका कोई दोष नहीं।

मुनीश्वर—तो मैंने अपने जीवन के लिये तुम्हारा नाश किया ?

रघुनाथ—यदि वह हो भी तो बुरा नहीं—मैं इतनी छोटी तबियत का आदमी नहीं हूँ कि इसे बुरा मानूंगा। लेकिन मान लीजिये। मै इतने दिनो तक आपसे बदला लेने के लिये तैयारी करता रहा हूँ मैंने काफी साधन भी प्राप्त कर लिया है। [कुर्ते की जेब से एक पत्र निकालता है] यह आपका एक पत्र है जो आपने पिता जी को लिखा था। [मुनीश्वर चौंक उठता है किन्तु दूसरे ही क्षण मुस्कराने लगता है]

रघुनाथ—हूँ—आप मुस्करा रहे हैं, अच्छा पत्र को सुन लीजिए। [पढ़ने लगता है]

पू यवर

मै लडकपन या जवानी के पागलपन म आपका समझ नहा सका इसका मुझे खेद है आशा है आप क्षमा करेंग। अपनी सफाइ मैं क्या दूँ– शायद दे भी नही सकता। उन दिना मेर हृदय म तूफान उठ रहा था मरी ालसाय मुझे प भ्रष्ट कर रही थीं— मस्तिष्क म वह शक्ति नहीं थी जो यह सब राक सके। जब मैं पाछे लौट कर दखता हूँ मुझे पश्चाताप हाता है। कि तु जो बीत गया लौटाया नहीं जा सकता। मै उसे धो ना चाहता हूँ अपनी सवाआ स, अपन रक्त स + + + + + अनाथ अब लाआ के लिये एक आश्रम खालन का विचार कर रहा हूँ। जिनके लिये समा क पास न सहानुभूति है और न याय—जिनका सारा जीवन विपत्ति की थपकिया म हा बीतता है। तन और मन तो इसके लिये मै दे सकता हूँ कि तु धन कहाँ स लाऊँगा ? यहा चि ता है। आश्रम की यवस्थापिका अशगरी दवी का बनाता।

मुनीश्वर—क्यों पढ रहे हा मैंन क्या लिखा था मुझे याद है।

रघु ाथ—अच्छी बात अपना दूसरा पत्र सुनिये।

मुनीश्वर—कोई भी नहीं—मैंन क्या और कब लिखा था भूल नहीं गया हूँ। तुम्हारा मतलब क्या है ? वह कहो।

रघुनाथ—मरा ? मेरा मतलब यह साबित करना कि आपने उन्ह बहका कर मरा सवनाश किया।
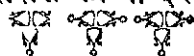
मुनीश्वर— खुशी से हाथ मिलाइए [आगे की ओर हाथ बढ़ाता है सफेद साड़ी पहने बाल खोले अशगरी का प्रवेश]

अशगरी —कभी नहीं। [रघुनाथ की ओर देखते हुए] आपको सोते जागते सपना देखना है—जिन्दगी मे जो कमजोर है—उसे सजाना है। आप फूलो के साथ खेलने के लिये बनाये गये हैं—पहाड़ों के साथ खेलने के लिये जिस कलेजे की जरूरत होती है [मुनीश्वर की ओर हाथ उठाकर] वह इनके पास है। आपके पास नहीं। अपने जीवन का सौन्दर्य और अपने हृदय की मधुरता आप क्यों बिगाड़ेंगे ? [मुनीश्वर को संकेत कर] जरा इधर

[अशगरी का प्रस्थान। उसके पीछे मुनीश्वर का भी प्रस्थान—रघुनाथ बेचैन होकर इधर उधर चारों ओर कमरे में नजर दौड़ाता है। बाईं ओर के कमरे से पर्दा हटाकर ललिता का प्रवेश। रघुनाथ उसे देख कर सहम उठता है। और उठ कर बाहर जाना चाहता है।]

ललिता—कुछ कहना है

रघुनाथ—[घूमकर] कहिये

ललिता— मुझे देखकर इस तरह भागते क्यों ?

रघुनाथ—इस लिये कि आपके सामने खड़े होने का साहस नहीं होता

ललिता—मेरा अपराध
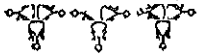
रघुनाथ—आपका नहीं मेरा

ललिता—[मुस्कराकर] मैं आपको क्षमा करती हूँ

रघुनाथ—मैंने आज तक न तो किसी को क्षमा किया है और न किसी की क्षमा चाहता हूँ

[ललिता उदास होकर रघुनाथ की ओर देखने लगती है रघुनाथ अपने सिर पर हाथ फेरने लगता है।] आपको पता नहीं हम दोनों में कितना अन्तर है।

ललिता—हम दोनों मनुष्य हैं

रघुनाथ—तो इससे क्या ?

ललिता—कहना पड़ेगा ?

रघुनाथ—हाँ कह डालिये।

[ललिता चुप होकर कभी रघुनाथ की ओर देखती है और कभी ज़मीन की ओर देखने लगती है—रघुनाथ जाना चाहता है।]

ललिता—ठहरिये।

रघुनाथ—किस लिये ? साफ क्यों नहीं कहती ?

ललिता—वरदान देने के लिये—मेरे देव—[ज़मीन की ओर देखनी लगती है]

रघुनाथ—[उपेक्षा की दृष्टि से देखता हुआ] वह तो बहुत दिन हुआ मैंने किसी को दे दिया ?

ललिता—दूसरे को भी दिया जा सकता है।
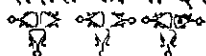
रघुनाथ—जिसे मिलना था मिल चुका। दूसरे का वरदान देने के पहल एक बार मुझे फिर देवता बनना पड़ेगा। जा अब सम्भव नही।

ललिता—तो मुझे निराश होना पड़गा ?

रघुनाथ—वास्तव मं आप को कोई आशा थी ? नहीं। राह चलत स दश कहन से काई दूत नहा वन जाता। साल भर हो रहा है बारह महीन और तान सौ साठ दिन वरदान का बात अब तक भूली थी ? मुझे यहा दख कर खैर—[उसकी ओर निद्व द होकर देखने लगता ह—जैसे उसके ऊपरी आवरण का भेद कर उसके हृदय को देखना चाहता ह—ललिता वहा खडी खडी कापने लगती है रघुनाथ आगे बढ़ कर उसके कन्धे पर हाथ रखता ह अशगरी का प्रवेश अशगरी चुपचाप दरवाज़ पर खड़ी हो जाती है—लकिन दूसरे ही क्षण घूम कर बाहर निकल जाती हे। दोनो थोड़ी देर उसी हालत में निश्चेष्ट खडे रहते हैं—रघुनाथ जैसे होश में आकर कुर्सी पर बैठता हुआ—] यह जानत हुये कि मै इस आश्रम से घृणा करता हूँ—इसकी इमारत मेरे रक्त मॉस से तैयार हुई है—इसमें और सहायता देना यहाँ तक कि इसके उत्सव में शामिल होन के लिये आजाना उस बार उनको अपने घर से निकाल दिया—कितनी सकीर्णता थी। इस लिये कि उनका ज म मुसलमान के घर हुआ था—कितनी सकीर्णता इस युग में जब मनुष्य सम्प्रदाय और धर्म के जेलखानों से

निकल कर खुले मैदान में आया है—कितनी हृदयहीनता [ललिता की ओर देखता हुआ] मैं जितना ही अधिक सोचता हूँ—आप को बहुत दूर पाता हूँ। आप—मुझे तो आप क्षमा करें। नहीं और किसी दूसरे को

ललिता—[जैसे ठोकर खाकर लड़खड़ा गई] बस [तर्जनी हिला कर] चुप रहिये अब मैं आप को क्षमा करती हूँ—एक दिन एक वर्ष के लिये नहीं सारी जिन्दगी के लिये। मैं दूर हूँ ठीक है मुझे दूर रहना ही चाहिये। आप क्या समझते हैं मैं आपका चरण पकड़ कर रोने लगूँगी। प्रेम की भिक्षा नहीं माँगी जाती महाशय! बिल्ली से चूहा खेलते ही खेलते मर जाता है—वही हालत आप मेरी करना चाहते हैं। आप से मैं दूर तो रहती हूँ—लेकिन इस तरह घबड़ा क्यों रहे हैं? गला बार बार भर क्या जाता है? [धीमे स्वर में] धोखा मुझे भी और अपने को भी [रघुनाथ उद्वेग में उसकी ओर देखता है] आप निश्चिंत रहिये मैं इस प्रवृत्ति को दबाऊँगी, अब फिर कभी आपको इस बात की शिकायत न होगी।

रघुनाथ—दब सकेगी?

ललिता—जरूर। आप को सन्देह है। इसलिये कि आप में साहस नहीं है। हृदय की आवाज तो आप सुन लेते हैं—लेकिन आत्मा की नहीं मेरे हृदय को ठुकरा कर आज आपने

मेरी आत्मा को जगा दिया है इसके लिये मैं आपकी सदैव कृतज्ञ

रघुनाथ—मैंने आपके हृदय को कब ठुकराया ?

ललिता—अभी दस मिनट पहले— जब मैं आपसे बहुत दूर थी।

रघुनाथ—मेरा मतलब नारीमोह से था—नारी प्रेम से नहीं।

ललिता—नारीमोह और नारी प्रेम मे कोई अन्तर नहीं है। कहने और समझने के तरीके जरूर भिन्न हैं—अलग अलग हैं। मैंने आपको कष्ट दिया—आपकी चिन्ता इसका खेद मुझे है—मेरे हृदय की कमजोरी थी—आशा है आप क्षमा करेंगे।

रघुनाथ—[गम्भीर हो कर धीरे से] वास्तव में मुझे प्रेम करती थीं। मुझमे प्रेम करने की कौन सी चीज मिली ?

ललिता—[हाथ जोड़ कर] जिस बात को मैं दबाना चाहती हूँ—सदैव के लिये सुला देना चाहती हूँ—उसे अब मत जगाइये।

रघुनाथ—[मुस्करा कर] उसे मैं सोने ही क्यों दूँ ?

ललिता—इस लिये कि आप बहुत पहले किसी को वरदान दे चुके हैं।

रघुनाथ—लेकिन उसने लिया नहीं।

/ ललिता—लिया या नहीं लिया मेरे लिये दोनों बराबर हैं—आप दे तो चुके—[रघुनाथ हाथ बढ़ाकर उसका हाथ पकड़ता है—
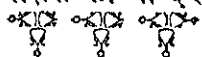
सिर हिला कर] छोड़ दीजिये। स्त्री का हृदय विश्वास चाहता है और फिर उस फुटबाल बनाइये—सब सहता जायगा। लेकिन जहां से दर्द पैदा हुआ वह किसी काम का नहीं एक आघात में ही फट कर इधर उधर छितरा जाता है। आप की आज्ञानुसार मैंने तो आपको क्षमा कर दिया आप भी मुझे क्षमा कर दें हम दोनों एक दूसरे को भूल कर जिन्दगी का नया रास्ता निकाल लें।

रघुनाथ—मुझसे तो नहीं होगा

ललिता– तब इस तरह ठुकराते क्या रहे

रघुनाथ—इसका जवाब क्या दूँ। मुझे पढाया गया था—अपनी लालसाओं को दबाओ— युवती के प्रेम से दूर रहो—यह सब माया है—जिन्दगी इससे बिगड़ जाती है। मैं तोते की तरह अपना पाठ याद करता जाता था। आदर्श के झमेलेमें में जिन्दगी को नहीं समझ सका।

ललिता—आप भाग्यमान थे। आप को ऐसी शिक्षा मिली थी। आप बच गये। आप अपने सम्राट हैं। न तो आप को तारे गिन कर रात बितानी है और न दिन मे दर्वाजा बन्द कर चादर तानना है। आपकी अवस्था में सिर के ऊपर तकिया रख कर जिसने आसू नहीं बहाया—अपने हृदय को लालसा की आग में नहीं डाला वह वास्तव में भाग्यमान हैं। उसी का

जीवन सफल है। उसकी इच्छा ससार में कानून का काम कर सकती है।

रघुनाथ—और अगर मैंने भी तारे गिन कर रातें बिताई हो और सिर के ऊपर तकिया रखकर आखा के रास्त से अपना हृदय बहा दिया हो तो

ललिता—[विस्मय से] सचमुच ? किस लिये ?

रघुनाथ—पता नहा शायद हृदय का बोझ हल्का करने के लिये

ललिता खैर अभी समय है अब से सम्हल जाइये।

रघुनाथ—तो अब क्या हागा ? [निराशा की दृष्टि से उसकी ओर देखने लगता है]

ललिता—कुछ नहीं हृदय स कहा जायेगा "अब तुम सो जाओ।" और आत्मा स कहा जायगा—"अब तुम जागा"।

रघुनाथ—लकिन यह जि दगी कितनी सूनी रहेगी

ललिता—लकिन साथ ही साथ कितनी सु दर और कितनी सुखी हागी। हृदय के भीतर चि ता और विकार—का समुद्र लहरे नहीं मारेगा। बच्चा का यह चाहिय—स्त्री को यह चाहिये-इसस छुट्टी अपन सम्राट कोई ब धन नहीं।

रघुनाथ—[ललिता का हाथ खींच कर अपने कन्धे पर रखते हुए] तो मुझे सदैव क लिये ?
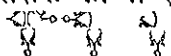
ललिता—मैं सदैव याद रखूंगी सहानुभूति और सम्मान के साथ

रघुनाथ—तब फिर जिंदगी का दूसरा रास्ता कैसे होगा ?

ललिता—इतना भी नहीं समझे ? मैं सहानभूति और सम्मान से याद रक्खूंगी। वहां वह बात न होगी जिसके कारण एक बार देख लेने से या स्वर सुन लेने से हृदय कांप उठता था मैं सब कुछ भूल जाती थी। मेरा नारीत्व जाग कर पत्नीत्व की ओर झुकना चाहता था।

रघुनाथ—क्या सबूत वह बात न होगी ?

ललिता—मेरा भविष्य का व्यवहार दूसरी बार के मिलन पर आपको पता चल जायगा।

रघुनाथ—मैं अब फिर नहीं मिलूंगा

ललिता—पुरुष का हृदय इतना कमजोर नहीं होना चाहिये। आप मुस्करा मिलियेगा मित्र की तरह, हृदय को कड़ा करके—सावधानी के साथ। जिस विचार के कारण पुरुष कमजोर और साहस हीन हो जाता है उसे अपने पास न आने दीजियेगा।
[कमरे के बाहर किसी की आहट मालूम पड़ती है। रघुनाथ चौंक कर उधर देखता है] कोई हो आने दीजिये किस का साहस है कि हम लोगों पर संदेह करे।

रघुनाथ—[ललिता की ओर देखकर] अच्छा तो अब चलूं ?
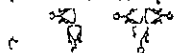
ललिता—जाइये ईश्वर करे आप सुखी रहें।

रघुनाथ—मैं आशीर्वाद नहीं चाहता।

ललिता—मेरे पास और है ही क्या? [ललिता का पर्दा हटा कर दूसरे कमरे में प्रस्थान।]

रघुनाथ—यह स्वप्न भी टूट गया। जीवन के समुद्र में तूफान आया है, डूबने के पहले हाथ पैर तो मारना ही। [उत्साह के साथ खड़ा होता है। दोनों हाथ ऊपर फेंक कर उंगलियों को मिला कर अंगड़ाई लेता है। असगरी का प्रवेश। रघुनाथ असगरी को देखकर सावधान होकर खड़ा होता है।]

असगरी—रघुनाथ बाबू— ?

रघुनाथ—कहिये

असगरी—आप यहाँ से चले जाइये। थोड़ी देर में यहाँ त्याग और साधना का ताण्डव प्रारम्भ होगा। आपकी आत्मा यह सब देख कर काँप उठेगी।

रघुनाथ—और आप?

असगरी—मैं?—मैं भी भाग लूँगी? एक साल इधर उधर भटकती रही हूँ मुझे कहीं शान्ति नहीं मिली। अब मैं अपने भगवान को सर्वत्र देखना चाहती हूँ किसी से घृणा नहीं कर सकती। भले और बुरे सब में पापी और पुण्यात्मा सब में सब जगह वही भगवान देख पड़ते हैं। मैं जंगल में रहूँ या इस
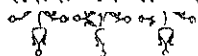
आश्रम में - यहाँ रहना और अच्छा है यहाँ जहाँ दुनिया के पापी प्राणी एक साथ हैं — इन्हीं के भीतर [ऊपर हाथ उठाकर] उन्हें ढूँढ निकालूँगा।

रघुनाथ—मुझे ऐसी आशा नहीं थी

अशगरी—मुझे भी नहीं थी भगवान की मर्जी। उन्होंने सकेत किया मैं चली आई। [रघुनाथ आश्चर्य में उसकी ओर देखता है] आश्चर्य की जरूरत नहीं है। यही सच है। अपनी ठीक जगह मुझे अब मिली है। यहाँ के रहने वालों को भगवान की जरूरत है। वह हैं ता इन्हीं के भीतर लेकिन इनको पता नहीं इन्हीं के भीतर मैं उसे जगाऊँगा। इनकी आत्मा में प्रकाश आ जायगा। ये भी देखने लगेंगे

रघुनाथ—यह सौदा बड़ा महँगा होगा— अशगरी

अशगरी— मेरे पास दाम की कमी नहीं है। भगवान का भरोसा यह खजाना कभी कम नहीं होगा रघुनाथ बाबू [ललिता का प्रवेश] आप लोगों का समझौता होगया।

ललिता—जी हाँ हम लोग जीवन भर मित्र रहेंगे। सुख दुःख में एक दूसरे का साथ देंगे। [मुनीश्वर का प्रवेश]

मुनीश्वर—[ललिता से] चलिये नीचे। सभा अब शुरू होगी। आपकी स्पीच तो तैयार होगी।

ललिता—मुझे अब आप की सभा में नहीं जाना है। मेरी जिन्दगी ने आज दूसरा रास्ता पकड़ा है। मुझे अपना अलग आश्रम बनाना होगा। [ललिता का प्रस्थान]

मुनीश्वर—[रघुनाथ से] और आप ?

रघुनाथ—मेरी भी वही हालत है। [जेब में से पत्रों का पुलिन्दा निकाल कर मेज पर रखते हुये] यह आपके पत्र हैं। आप निश्चिन्त हो कर जैसी तबियत चाहे मैंने आज जो छोड़ा है उसके सामने —दुनिया की कोई भी सम्पत्ति अब मेरे काम की नहीं रही। रघुनाथ का प्रस्थान] [भवानी दयाल का प्रवेश]

भवानीदयाल—मैं आपसे कहता था न ? आपने ख्याल नहीं किया। उन्होंने सभी जायदाद प्रभुदयाल के नाम कर दी। मेरे छोटे भाई के नाम

मुनीश्वर—तुम्हारे पिताजी ने ?

भवानी—हाँ

मुनीश्वर—तब क्या तुम स्वतन्त्र हो गये। अब तुम सच्चे सेवक हो सकोगे [भवानीदयाल का सन्देह से देखते हुए प्रस्थान—अशगरी से] और आप ?

अशगरी—जहां तुम हो [दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं। पर्दा गिरता है।]

❀ समाप्त ❀